॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

३२

॥ श्रीः ॥

प्राकृत-व्याकरण

लेखक :-

आचार्य श्री मधुसूदनप्रसाद मिश्र

अध्यक्ष, अनुसन्धान विभाग, अरेराज

तथा

सदस्य, बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना ।

चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१७

मूल्य : ५-००

The Chowkhamba Vidya Bhawan,

Chowk, Varanasi.

(INDIA)

1960

Phone Branch. 3076 / H. Office. 3145

भूमिका

(श्री भुवनारायण त्रिपाठी शास्त्री
सभापति, जिला कांग्रेस समिति, मोतिहारी
तथा श्री सोमेश्वरनाथसञ्चालक मण्डल, अरेराज)

संस्कृत भाषा की अपेक्षा प्राकृत भाषा अधिक कोमल तथा मधुर होती है। 'परुसा सक्कअ-बंधा पाउअ-बंधो वि होइ सुउमारो। पुरिसमहिलाणं जेत्तिअ मिहन्तरं तेत्तिअमिमाणं' अर्थात् संस्कृत भाषा परुष (कठोर) तथा प्राकृत भाषा सुकुमार होती है। और इन दोनों भाषाओं में परस्पर उतना ही भेद है जितना एक पुरुष और स्त्री में।

भाषा के अनुसार आज तक के समय को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—संस्कृत, प्राकृत और आजकल की भाषायें; यथा—हिन्दी, मराठी, गुजराती और बँगला आदि। संस्कृत भाषा में हिन्दुओं के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों से लेकर काव्यों तक के ग्रन्थ सम्मिलित हैं। प्राकृत भाषा में बौद्धों तथा जैनियों के धार्मिक ग्रन्थ एवं कुछ काव्य ग्रन्थ भी हैं। इस भाषा का विकास ईसा से ६०० वर्ष पहले हो चुका था।

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के निर्णय के पूर्व यह विचारना आवश्यक है कि 'किसी भी नई भाषा के जन्म की क्यों आवश्यकता पड़ती है?' यदि हम लोग इस प्रश्न पर गौर से विचार करें तो यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि मनुष्य कष्टसाध्य प्रयत्न करना नहीं चाहता। वह जिह्वा, कण्ठ, तालु आदि स्थानों से अधिक प्रयत्न द्वारा शब्दों का उच्चारण करना पसंद नहीं करता। यही कारण है कि धीरे-धीरे भाषा में कुछ विकृतियाँ उत्पन्न होती जाती हैं। कुछ दिनों के बाद उसी का एक स्वरूप बन जाता है, वही प्रधान बोलचाल की भाषा बन बैठती है और उसी में काव्य आदि की रचना प्रारम्भ हो जाती है। वैदिक

काल से लेकर आज तक की परिवर्तित भाषाओं पर ध्यान देने से इस बात की पूर्ण पुष्टि हो जाती है। नीचे कुछ दृष्टान्त दिये जाते हैं—

संस्कृत के 'ग्राम' तथा 'मध्य' दो शब्दों के मिलने से 'ग्राममध्य' एक शब्द बना। अब इसी शब्द का उच्चारण करते समय एक अशिक्षित आदमी, जिसे उच्चारण का ज्ञान नहीं है और जो स्वभाव से ही कष्टसाध्य उच्चारण करना नहीं चाहता, जीभ को कष्ट से बचाने के लिए एक विलक्षण ही शब्द-स्वरूप का जनक हो जायगा। वह उक्त शब्द के मध्य के स्थान में 'मज्झ', 'माझ', 'माध', 'माह', 'मह', 'मा' और 'मे' तथा ग्राम शब्द के स्थान में 'गाम' और 'गांव' कहेगा। इस प्रकार ग्राममध्य के स्थान में 'गाम में' और 'गांव में' बन गया। इसी प्रकार 'कुम्भकार' के स्थान में 'कुम्भार', 'कुंहार' और 'कोंहार' शब्द बन गये। इनके अतिरिक्त मुख = मुह, अर्प = अप्प (हि०—आप); यष्टि = लट्ठी, लाठी; द्वादश = बारह आदि अनेक शब्द हैं। कभी-कभी तो शब्दों का परिवर्तन इतना हो जाता है कि उनका पता लगाने में बड़े-बड़े शब्दशास्त्रियों को भी चक्कर खाना पड़ता है। जैसे अंग्रेजों के समय में राजकीय कोषागार के प्रहरी 'हू कम्स देअर' (Who comes there) के स्थान में 'हुकुम दर' कहते थे। तात्पर्य यह कि किसी किसी शब्द के शुद्ध रूप का पता लगाना असम्भव सा हो जाता है। अस्तु।

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के विषय में भारतीय वैयाकरणों तथा आलङ्कारिकों का कथन है कि इस भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। संस्कृत ही इसकी जननी है। प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रकृति' से की जाती है। प्रकृति शब्द का अर्थ बीज अथवा मूल तत्त्व है। इस शब्द का निर्वचन है—'प्रक्रियते यया सा प्रकृतिः' अर्थात् जिससे दूसरे पदार्थों की उत्पत्ति हो। 'मूलप्रकृतिरविकृतिः' (साङ्ख्य) अर्थात् मूल प्रकृति अविकृत रहती है। सारांश यह हुआ कि 'प्रकृति' उसे कहते हैं जो दूसरे पदार्थों का उत्पादक तथा स्वयं अविकृत हो। यहाँ

आचार्यों के मत में संस्कृत ही प्रकृति है। प्राकृत के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र अपने प्राकृत व्याकरण के आठवें अध्याय के प्रथम सूत्र में कहते हैं कि—'प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् ।' अर्थात् मूल संस्कृत है और संस्कृत में जिसका उद्भव है अथवा जिसका प्रादुर्भाव संस्कृत से हुआ है उसे 'प्राकृत' कहते हैं। वररुचि ने प्राकृत का व्याकरण लिखते हुए प्राकृत-प्रकाश में लिखा है कि 'शेषः संस्कृतात्' (वर० ९।१८) अर्थात् बताये हुए नियमों के अतिरिक्त शेष संस्कृत से आये हुए हैं। इसी प्रकार मार्कण्डेय 'प्राकृतसर्वस्व' के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र में लिखते हैं—'प्रकृतिः संस्कृतं, तत्र भवं प्राकृतमुच्यते ।' अर्थात् संस्कृत मूल भाषा है और उससे जन्म लेनेवाली भाषा को प्राकृत कहते हैं। दशरूपक के टीकाकार धनिक परिच्छेद २, श्लोक ६० की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—'प्रकृतेः आगतं प्राकृतम् । प्रकृतिः संस्कृतम् ।' यही मत 'कर्पूरमञ्जरी' के टीकाकार वासुदेव, 'प्राकृतप्रकाश' के रचयिता चण्ड और 'षड्भाषाचन्द्रिका' के लेखक लक्ष्मीधर को भी अभिमत है। 'प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता ।' (लक्ष्मीधर पृ० ४, श्लोक २५) अर्थात् मूल भाषा संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार सब भारतीय विद्वानों ने भिन्न-भिन्न शब्दों में इन्हीं मतों की पुष्टि की है। आधुनिक विद्वानों में डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर तथा चिन्तामणि विनायक वैद्य जी को भी यह मत अभिप्रेत है।

परन्तु इसके विपरीत पश्चिमी विद्वान् पिशल आदि का विचार भी विचारणीय है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् पिशल का, जिन्होंने प्राकृत के क्षेत्र में बड़े ही परिश्रम और पाण्डित्य से काम करके हम लोगों का बड़ा ही उपकार किया है, कथन है कि—संस्कृत शिष्ट समाज की भाषा थी और प्राकृत अशिक्षित जनों की। प्राकृत भाषा वह थी जिसे साधारण जन बोला करते थे और उसी का संस्कार से सम्पन्न रूप 'संस्कृत' कहलाया। जैसे किसी लकड़ी का एक टुकड़ा पहले अपनी प्राकृतिक अवस्था

में पड़ा हुआ रहता है, किन्तु जब उसे संस्कारों द्वारा काट, छाँट एवं खराद कर मेज, कुर्सी आदि बनाते हैं तो वही अपना संस्कृत रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार जो अपरिष्कृत भाषा अपनी प्राकृतिक अवस्था में पड़ी हुई जन-साधारण द्वारा उच्चरित होती थी, वही प्राकृत थी और उसी की शुद्ध एवं परिष्कृत आकृति संस्कृत भाषा कही जाने लगी। इसके प्रमाण में इनका कहना है कि यदि प्राकृत संस्कृत से निकली हुई होती तो उसके कुल शब्द संस्कृत से सिद्ध हो जाते, किन्तु अनुसन्धान द्वारा विदित होता है कि सिद्ध होते नहीं हैं। इसलिए प्राकृत की उत्पत्ति केवल संस्कृत से मानना युक्तिसङ्गत नहीं। पिशल के इसी मत का समर्थन सभी पश्चिमी विद्वान् करते हैं।

पाली भी प्राकृत के अन्दर ही मानी जाती है। इसे 'प्राचीन प्राकृत' कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने इसी भाषा में अपने धर्म का प्रचार किया था। आजकल बौद्धों के धार्मिक ग्रन्थ तथा अनेक शिला-लेख आदि भी इसी भाषा में पाये जाते हैं। पाली और प्राकृत में कुछ अन्तर पड़ गया है, इसलिए अब पाली को अन्य भाषा मानते हैं और प्राकृत कहने से पाली को अलग समझते हैं। प्राकृत के वैयाकरणों तथा अलङ्कार-शास्त्रज्ञों ने पाली को पृथक् मान कर प्राकृत-व्याकरण आदि लिखते समय इसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

प्राकृत के भेदों में 'महाराष्ट्री' उत्तम तथा प्रधान प्राकृत के रूप में समझी जाती है। दण्डी ने 'काव्यादर्श' के प्रथम परिच्छेद के चौंतीसवें श्लोक में लिखा है—'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।' अर्थात् महाराष्ट्री भाषा श्रेष्ठ प्राकृत समझी जाती है। कतिपय भारतीय विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग केवल महाराष्ट्री ही के लिए किया है। जैसे हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत के व्याकरण में महाराष्ट्री के लिए प्राकृत शब्द का प्रयोग किया है। 'शेषं प्राकृतवत्' (हेम० ४-२८६)। प्राकृत के व्याकरण ग्रन्थों में महाराष्ट्री को ही प्रधानता दी गई है। वररुचि ने नव परिच्छेदों

में चार सौ चौबीस सूत्रों द्वारा महाराष्ट्री का विचार किया है। अन्य तीन प्राकृतों का विचार एक-एक परिच्छेद में क्रम से १४, १७ और ३२ सूत्रों द्वारा किया है। इसी प्रकार सब वैयाकरणों ने पहले महाराष्ट्री का उल्लेख किया है। महाराष्ट्री में प्रवरसेन-विरचित सेतुबन्ध नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस पुस्तक के संबन्ध में बाण ने हर्षचरित में लिखा है—

'कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥'

अर्थात् कुमुद के समान उज्ज्वल प्रवरसेन का यश सेतुबन्ध के द्वारा समुद्र के पार तक विख्यात हो गया जैसे वानरों की सेना सेतु (पुल) के द्वारा समुद्र पार कर विख्यात हो गई थी। सेतुबन्ध संस्कृत नाम है। प्राकृत में इसे रावणवहो या दहमुहवहो कहते हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्री में हाल की सतसई तथा वज्जालग्ग और गउडवहो आदि काव्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

प्राकृत के कितने भेद और उपभेद हैं, इस संबन्ध में भी एक मत नहीं है। वररुचि के अनुसार प्राकृत के चार भेद हैं। महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची। इन्हीं चारों का उल्लेख प्राकृत-प्रकाश में हुआ है। हेमचन्द्र ने इन चारों के अतिरिक्त आर्ष, चूलिकापैशाची और अपभ्रंश को भी प्राकृत ही के अन्तर्गत माना है। अर्थात् महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, आर्ष, चूलिकापैशाची और अपभ्रंश ये सात भेद उन्हें अभिप्रेत हैं। त्रिविक्रम हेमचन्द्र की तरह उपर्युक्त भेदों में से आर्ष के अतिरिक्त छ को मानते और उन्हीं का उल्लेख करते हैं। इन वैयाकरणों के अतिरिक्त मार्कण्डेय, जो वररुचि के अनुयायी हैं, प्राकृत के प्रधानतः चार विभाग करते हैं—भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच। अब इनके उपभेदों के साथ प्राकृत को सोलह भागों में विभक्त करते हैं। वे सोलह भेद इस प्रकार हैं—भाषा के पाँच भेद—महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, आवन्ती और मागधी (मार्क० १-५); विभाषा के पाँच भेद—शाकारी, चाण्डाली, शाबरी, आभीरिका और टक्की; अपभ्रंश

के तीन भेद—नागर, ब्राचड और उपनागर; पैशाच के तीन भेद—कैकेय, शौरसेन और पाञ्चाल। इस तरह प्राकृत के सोलह भेद हुए।

मार्कण्डेय (१-४) की वृत्ति लिखते हुए किसी ने भाषा के आठ, विभाषा के छ, अपभ्रंश के सत्ताईस और पैशाच के ग्यारह भेद माने हैं। इनके मत से प्राकृत के बावन भेद हुए। परन्तु मार्कण्डेय स्वयं इतने भेदों को नहीं मानते। वे अर्द्धमागधी को मागधी के तथा बाह्लीकी को आवन्ती के अन्तर्गत मानते हैं। दाक्षिणात्य का कोई लक्षण नहीं मिलने से उसे भाषा के भीतर नहीं मानते। इस प्रकार उक्त वृत्तिकार द्वारा बतलाये आठ प्रकारों वाली भाषा का खण्डन कर छ प्रकार की विभाषा में औढ्री को शाबरी में अन्तर्भावित मानते तथा द्राविडी की जगह ढक्की भाषा का प्रतिपादन करते हैं क्योंकि द्राविडी ढक्क देश की भाषा के भीतर आ जाती है।

'ढक्कदेशीयभाषायां दृश्यते द्राविडी तथा।
अत्रैवायं विशेषोऽस्ति द्रविडेनादृता परम् ॥' (मार्कं० १. ६.)

एवं प्रकारेण मार्कण्डेय ने सत्ताईस प्रकार के अपभ्रंश तथा ग्यारह प्रकार के पैशाच का एक का दूसरे में अन्तर्भाव मानकर क्रम से तीन-तीन भेद माने हैं। इस तरह बावन प्रकार के बदले उसके केवल सोलह ही भेद स्थिर किये हैं। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में चार प्रकार की भाषा बतलाई है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र।

'तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रश्चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥' (काव्या० १. ३६)

इनके अनुसार संस्कृत से देवताओं की भाषा, प्राकृत से तद्भव, तत्सम और देशी भाषा, अपभ्रंश से आभीर आदि जातिविशेष की भाषा और मिश्र से मिली हुई भाषाओं का बोध होता है। शास्त्र में संस्कृत से इतर सब भाषायें अपभ्रंश कहलाती हैं। इनके अनुसार प्राकृत के महाराष्ट्री, शौरसेनी, गौडी, लाटी और भूतभाषा (पैशाची) ये पाँच भेद हैं। प्राकृत के ये और भी अन्य भेद मानते हैं। दूसरे कई आचार्यों

ने प्राकृत के अन्य भी कई भेद बतलाये हैं, परन्तु सब ने महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी को बिना किसी दलील के स्वीकार किया है। वास्तव में ये ही तीनों प्रधान हैं और काव्य-नाटकों में इन्हीं तीनों का समावेश है। अतः ये ही तीन प्रधान प्राकृत हैं।

संस्कृत साहित्य में ऐसा कोई भी नाटक नहीं है जो केवल संस्कृत ही में हो और उसमें प्राकृत न हो। नाटकों में कुलीन, श्रेष्ठ तथा शिक्षित पुरुष संस्कृत भाषा का व्यवहार करते हैं तथा कुलीन और शिक्षिता स्त्री शौरसेनी में गद्य तथा महाराष्ट्री में पद्य का व्यवहार करती हैं। मतलब यह कि साधारण बात-चीत तो शौरसेनी में और कुछ गान आदि महाराष्ट्री में करती हैं। शौरसेनी गद्य की तथा महाराष्ट्री पद्य की भाषा है। किसी भी नाटक अथवा प्राकृत के काव्यग्रन्थ में गद्य महाराष्ट्री में और पद्य शौरसेनी में दृष्टिगोचर नहीं होते। नाटकों में निम्न लोगों की तथा नीच वर्णों की बोली मागधी भाषा में पाई जाती है। नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत के महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी ये तीन प्रकार ही प्रधान हैं और इन्हीं का व्यवहार अधिकता से पाया जाता है। इनके अतिरिक्त और भी आवन्ती, ढक्क, शाबरी, प्राच्या और चाण्डाली भाषायें देखने में आती हैं, परन्तु कई आचार्यों के मत से आवन्ती और प्राच्या शौरसेनी के तथा ढक्क, शाबरी और चाण्डाली मागधी के अन्तर्गत हैं। केवल विक्रमोर्वशीय में कुछ पद्य अपभ्रंश के भी आये हैं। इसके विषय में कुछ लोगों का कहना है कि अपभ्रंश के वे पद्य पीछे से जोड़े गये हैं।

महाराष्ट्री भाषा का नाम महाराष्ट्र के नाम पर पड़ा। महाराष्ट्र की भाषा महाराष्ट्री कहलाई। इसमें अक्षरों का लोप बहुत होता है, इसलिए इसका व्यवहार पद्य के लिए उत्तम माना गया। इसमें अक्षरों का इतना लोप होता है कि भाषा की जटिलता बढ़ जाती है इसलिए इसका गद्य समझना बड़ा कठिन होता है। इस भाषा के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

शौरसेनी भाषा का नाटकों में प्रयुक्त गद्यभाषाओं में प्रथम स्थान है। शूरसेनों की भाषा का नाम शौरसेनी पड़ा। शूरसेनों की राजधानी मथुरा थी और मथुरा के आस-पास बोली जाने वाली भाषा शौरसेनी कहलाती थी।

मागधी से वररुचि के अनुसार मगध देश की भाषा समझी जाती है। 'मागधानां भाषा मागधी' (वर० ११. १. वृत्ति)। पटने के समीपवर्ती स्थलों को मगध कहते थे। आज भी बिहार राज्य में बोली जानेवाली भोजपुरी आदि भाषाओं का मागधी से बहुत कुछ सामीप्य है। मार्कण्डेय का कथन है कि राक्षस, भिक्षु, क्षपणक और चेटी आदि की भाषा का नाम मागधी है—'राक्षसभिक्षुक्षपणकचेटाद्या मागधीं प्राहुः' (मा० १२. १. वृ०)। भरत के अनुसार अन्तःपुर में रहने वालों की भाषा मागधी है। इनके अनुसार नपुंसक, स्नातक और कञ्चुकी अन्तःपुर में नियुक्त होते थे। दशरूपक के अनुसार पिशाच और अत्यन्त नीच लोग पैशाची और मागधी बोलते हैं—'पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा।'

अवन्ति देश की भाषा आवन्ती कहलाती है। अवन्ति देश में चेदि, मालव, उज्जयिनी आदि देश सम्मिलित थे—'चेदिमालवोज्जयिन्यादिरवन्तीदेशः' तद्भवा आवन्ती दाण्डिकादि भाषा' (मार्क० ११।१ की वृत्ति)। आवन्ती महाराष्ट्री और शौरसेनी के सांकर्य से सिद्ध होती है। 'भरत' के अनुसार नाटकों में यह सदा मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त होती है। मार्कण्डेय के अनुसार यह भाषा का एक भेद है।

प्राच्या मार्कण्डेय के अनुसार विदूषक और विट आदि हँसोड़ पात्रों की भाषा है। भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार विदूषक आदि की भाषा प्राच्या है—'प्राच्या विदूषकादीनाम्।' पृथ्वीधर ने मृच्छकटिक की टीका में इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि—'प्राच्यभाषापाठको विदूषकः' अर्थात् विदूषक प्राच्य भाषा का पाठक होता है।

ढक्क भाषा पृथ्वीधर के अनुसार मृच्छकटिक में माथुर और द्यूतकर की बोली है। ढक्क शब्द से जान पड़ता है कि यह ढाका के आस-पास की भाषा थी।

चाण्डालों की भाषा चाण्डाली तथा शबरों की भाषा शाबरी कहलाती थी। अस्तु।

शूद्रक के मृच्छकटिक में प्राकृत के नाना प्रकार देखने में आते हैं। अन्य नाटकों में महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी ये तीन ही भाषायें पाई जाती हैं। किसी-किसी नाटक में एक पात्र चाण्डाल भी है जो चाण्डाली बोलता है। मृच्छकटिक में अन्य प्राकृत के अतिरिक्त ढक्क और आवन्ती भी आती हैं। माथुर तथा द्यूतकर ढक्क और वीरक तथा चन्दनक आवन्ती भाषा बोलते हैं। विदूषक की भाषा किसी-किसी के विचार से प्राच्या है। कर्णपूरक और वीरक के पद्य महाराष्ट्री में हैं। नटी, मैत्रेय, वसन्तसेना, चेटी, रदनिका, मदनिका, कर्णपूरक आदि के गद्य की भाषा शौरसेनी है। शकार, चेट, चारुदत्त का लड़का और भिक्षु की बोली, मागधी में है।

प्राकृत भाषा में कर्पूरमञ्जरी नामक एक ही सट्टक है। इसमें महाराष्ट्री और शौरसेनी दो ही भाषायें हैं। जितने पद्य हैं, वे सब महाराष्ट्री में और जितने गद्य हैं सब शौरसेनी में लिखे गये हैं। कहीं-कहीं इन दोनों की खिचड़ी भी दिखाई पड़ती है। जैसे—'गेण्हिअ के' स्थान पर 'घेत्तूण' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर ऐसे उदाहरण मिलते हैं। मालूम नहीं, यह कवि का प्रमाद है या छापेखानों की भूल। कर्पूरमञ्जरी के अनेक संस्करण निकल चुके हैं परन्तु प्राकृत भाषा की दृष्टि से 'हारवार्ड ओरिएण्टल सीरीज' द्वारा संपादित तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण सर्वोत्तम है।

संस्कृत नाटकों में प्राकृत की दृष्टि से मृच्छकटिक के अतिरिक्त विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस, उत्तररामचरित आदि प्रसिद्ध नाटक हैं।

नाटकों में सूत्रधार का पाठ सबसे पहले आता है। सूत्रधार की भाषा संस्कृत है, परन्तु महाकवि भास-प्रणीत 'चारुदत्त' में यह शौरसेनी में बोलता है। 'मृच्छकटिक' में भी नटी के साथ बातचीत करते समय सूत्रधार ने शौरसेनी का ही व्यवहार किया है।

नटी की भाषा सब नाटकों में शौरसेनी ही है। पर यह स्मरण रहे कि शौरसेनी गद्य की भाषा है। इसलिए नटी को जहाँ गाने की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ गान महाराष्ट्री भाषा में है। यथा शाकुन्तल में—'नटी गायति—

ईसीसि चुम्बिआइं भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाणि ॥'

पारिपार्श्वक की भाषा संस्कृत में ही पाई जाती है। इसका पाठ विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र, वेणीसंहार तथा माधवभट्ट-रचित सुभद्राहरण आदि नाटकों में आया है।

विदूषक की बोली सब नाटकों में एक सी ही है। इसकी भाषा हेमचन्द्र और त्रिविक्रम के अनुसार शौरसेनी तथा मार्कण्डेय के अनुसार प्राच्या है। इसका पाठ मृच्छकटिक, अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र आदि नाटकों में आया है। मालविकाग्निमित्र में इसका पाठ प्रधान रूप से आया है और प्रत्येक अङ्क में है।

सूत की बोली संस्कृत में पाई जाती है। जहाँ-जहाँ सूत का पाठ है, वहाँ वह संस्कृत ही बोलता पाया जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, प्रतिमा, वेणीसंहार तथा कंसवध आदि नाटकों में सूत का पाठ पाया जाता है।

राजा की भाषा अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, प्रतिमा, मुद्राराक्षस, मालविकाग्निमित्र, वेणीसंहार, कर्णसुन्दरी तथा कंसवध आदि नाटकों में संस्कृत ही पाई जाती है। केवल विक्रमोर्वशीय के चौथे अङ्क में पुरूरवा नामक राजा ने उर्वशी के लिए विक्षिप्त हो कर हंस, भौंरे तथा

चक्रवाक आदि से बातचीत करते हुए महाराष्ट्री और अपभ्रंश का भी प्रयोग किया है। चौथे अङ्क के ६, ११, १४, १९, २०, २४, २८, २९, ३५, ३६, ४१, ५३, ५४, ५९, ६३, ६८, ७१ और ७५ संख्यावाले श्लोकों को महाराष्ट्री तथा १२, ४३, ४५, ४८ और ५० संख्यावाले श्लोकों को अपभ्रंश भाषा में कहते हैं। यथा—

राजा—'मम्मररणिअमणोहरए; कुसुमिअतरुवरपल्लविए।
दइआविरहुम्माइअओ; काणणं भमइ गइंदओ ॥'
[मर्मररणितमनोहरे कुसुमिततरुवरपल्लविते।
दयिताविरहोन्मादितः कानने भ्रमति गजेन्द्रः ॥]
(विक्र० ४।३५)

'हउं पइं पुच्छिमि अक्खहि गअवरु; ललिअपहारे णासिअतरुवरु।
दूरविणिज्जिअ-ससहरुकन्ती, दिट्ठी पिअ पइं संमुह-जन्ती ॥'
[अहं त्वां पृच्छामि आचक्ष्व गजवर; ललितप्रहारेण नाशिततरुवर।
दूरविनिर्जित-शशधर-कान्तिर्दृष्टा प्रिया त्वया संमुखं यान्ती ॥]

पिछले पृष्ठ के वर्णित दोनों श्लोक क्रमशः महाराष्ट्री और अपभ्रंश भाषा के हैं।

कञ्चुकी की बोली संस्कृत भाषा में पाई जाती है। इसका पाठ अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, उत्तररामचरित, प्रतिमा, मुद्राराक्षस, मालविकाग्निमित्र तथा वेणी-संहार आदि नाटकों में आया है।

प्रतीहारी, चेटी, तापसी आदि की बोली शौरसेनी में है। ये पात्र प्रायः सभी नाटकों में आये हैं। दौवारिक की भाषा भी शौरसेनी ही पाई जाती है। परन्तु कंसवध में हेमाङ्गद नाम के एक दौवारिक ने एक स्थान पर एक श्लोक संस्कृत में भी कहा है। सुभद्राहरण, अभिज्ञानशाकुन्तल आदि अनेक नाटकों में दौवारिक का पाठ है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में रक्षियों (सिपाहियों), धीवर और शकुन्तला के पुत्र की; चारुदत्त में शकार की; मृच्छकटिक में शकार, चेट, चारुदत्त के पुत्र, संवाहक और भिक्षु की; वेणीसंहार में राक्षस

और राक्षसी की तथा कंसवध में कुब्जक और रजक की बोली मागधी भाषा में है। मागधी गद्य और पद्य दोनों की ही भाषा है। यद्यपि उच्च कुल की एवं शिक्षित नारियाँ गद्य-पद्य में क्रमशः शौरसेनी, महाराष्ट्री का ही व्यवहार करती हैं, तो भी कई नाटकों में नारी का पाठ संस्कृत भाषा में भी मिलता है। जैसे उत्तररामचरित में तापसी, आत्रेयी, वासन्ती, तमसा, मुरला, अरुन्धती, पृथिवी, भागीरथी और गङ्गा की; कर्णसुन्दरी में सखी और नायिका के पद्य की; कंसवध में दूती विलासवती, देवकी और केवल कुछ स्थलों पर कुब्जा की बोली संस्कृत भाषा में पाई जाती है। प्रतिमा में भट एक स्थान पर शौरसेनी तथा दूसरे पर संस्कृत का प्रयोग करता है। किसी-किसी नाटक में ऐसा भी देखा जाता है कि जब कोई पात्र किसी दूसरे का अनुकरण करता है, तो वह अपनी भाषा छोड़कर अनुकार्य व्यक्ति की ही भाषा बोलता है। जैसे मुद्राराक्षस में संस्कृत का बोलने वाला विराध आहितुण्डिक का अनुकरण करने पर शौरसेनी भी बोलता है। वेणी-संहार में मुनिवेषधारी राक्षस संस्कृत भाषा का भी व्यवहार करता है।

मृच्छकटिक में स्थावरक और रोहसेन नामक चाण्डालों तथा मुद्राराक्षस में आये चाण्डालों की बोली चाण्डाली कहलाती है। इन सब के अतिरिक्त जिन पात्रों की चर्चा नहीं की गई है, उनके साथ वे ही साधारण नियम लागू हैं।

साहित्यदर्पण में श्रेष्ठ चेट और राजपुत्रों की भाषा अर्द्धमागधी बतलाई गई है। परन्तु किसी नाटककार ने किसी भी पात्र के लिए इस भाषा का व्यवहार नहीं किया है। चेट का पाठ मृच्छकटिक में आया है, जो मागधी में है। इसी प्रकार राजपुत्रों की भाषा भी अर्द्धमागधी में नहीं है—'चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठानाञ्चार्द्धमागधी' (साहि० ६, १६०)।

साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने भाषा-विभाग का वर्णन करते हुए लिखा है कि शिक्षित मध्यम तथा उच्च वर्ग के मनुष्यों की भाषा संस्कृत

तथा मध्यम और उत्तम वर्ग की स्त्रियों की भाषा शौरसेनी है। योद्धा और नागरिकों की भाषा दाक्षिणात्या है। परन्तु यह भाषा भी प्रयुक्त हुई दृष्टिगोचर नहीं होती। विश्वनाथ ने बालकों की बोली का विधान करते हुए लिखा है कि बालक कभी-कभी संस्कृत भी बोलते हैं। परन्तु किसी भी नाटक में कोई बालक संस्कृत बोलता नहीं पाया जाता। कवियों ने उपर्युक्त नियम का बिलकुल पालन नहीं किया है।

ऐश्वर्य से पागल, दरिद्र, भिक्षु एवं वल्कल धारण करने वाले पुरुषों की भाषा प्राकृत बतलाई गई है। पर उत्तम संन्यासियों के लिए संस्कृत का विधान है। कभी-कभी वेश्या के लिए भी संस्कृत भाषा के व्यवहार का विधान है।

साहित्यदर्पण के अनुसार व्यापक नियम यह है कि जिस पात्र के देश की जो भाषा है, वह उसी को बोलता है और कार्यवश उत्तम आदि पात्र भाषा का परिवर्तन भी करते हैं—

'यद्देश्यं नीचपात्रं तु तद्देश्यं तस्य भाषितम्।
कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषा-विपर्ययः॥'

भाषा का परिवर्तन करना मुद्राराक्षस आदि नाटकों में पाया जाता है।

स्त्री, सखी, बालवेश्या, धूर्त तथा अप्सरायें अपनी चतुरता प्रदर्शित करने के लिए बीच में संस्कृत बोल सकती हैं—

'योषित्-सखी-बालवेश्याकितवाप्सरसां तथा।
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्यं संस्कृतं चान्तराऽन्तरा॥'

कर्णसुन्दरी में सखी और नायिका, कंसवध में दौवारिक और कुब्जा तथा सुभद्राहरण में नटी भी विदग्धता दिखलाने के लिए संस्कृत भाषा बोलती हैं।

मालविकाग्निमित्र में परिव्राजिका कार्यवश संस्कृत बोलती है।

वाह्लीक भाषा जो उत्तर-देशवासियों के लिए और द्राविड़ी जो द्रविड-देशवासियों के लिए कही गई है, उनका नाटकों में कहीं भी अस्तित्व देखने में नहीं आता—'वाह्लीकभाषोदीच्यानां द्राविडी द्रविडादिषु' (साहि० ६, १६२)।

एक बात और उल्लेखनीय है। प्रायः देखा जाता है कि एक ही घर में पुरुष संस्कृत, स्त्री शौरसेनी और लड़का मागधी बोलता है। इसका क्या कारण है ? लड़के तो ऐसे होते नहीं कि बचपन में ही कोई स्वतन्त्र भाषा सीख लें। जो भाषा उनकी माता तथा घरवाले बोलते हैं, वही भाषा वे सीखेंगे और बोलेंगे। माता की भाषा से भिन्न भाषा कभी भी उनसे उच्चारित नहीं हो सकती। फिर नाटकों में ऐसी विचित्रता क्यों देखने में आती है ? शकुन्तला में दुष्यन्त आदि संस्कृत में, शकुन्तला तथा उसकी सखियाँ शौरसेनी में बोलती हैं। तब दुष्यन्त का लड़का मागधी कैसे सीख गया ? इसी प्रकार मृच्छकटिक में चारुदत्त का लड़का भी मागधी बोलता है। इस प्रकार नाटकों के सहारे ठीक विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि बोली दूसरी होने पर भी विशेष स्थल के लिए अन्य बोली बोलनी पड़ती है। किन्तु यह भी देखने में आता है कि लड़कों की बोली स्वभावतः ही मागधी होती है। आजकल के लड़के भी प्रायः मागधी ही बोलते हैं। जैसे :—'ए ताता ताल लोपेया द।' इसकी हिन्दी 'ऐ चाचा, चार रुपया दो' होगी। इस प्रकार सब लड़के र के स्थान में ल का प्रयोग करते हैं। अतः इस सम्बन्ध में उक्त सन्देह अनावश्यक है।

पहले प्राकृत की उत्पत्ति के विषय में मैंने अपनी सम्मति न देकर केवल भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मत का ही उल्लेख किया है। अब अपनी सम्मति देना आवश्यक समझ अपना निर्णय दे रहा हूँ।

मेरे विचार से प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत ही से जान पड़ती है क्योंकि भाषा-विज्ञान की ओर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि मनुष्य कष्टसाध्य प्रयत्न न कर सुखोच्चार्य शब्द की ओर ही ढुलक जाता है। अतः जो अशिक्षित जन संस्कृत बोलने की चेष्टा तो करते थे, किन्तु बोल नहीं पाते थे उन्हीं के उच्चारण-दोष से बिगड़-बिगड़ कर एक अन्य भाषा बन गई। सारांश यह कि संस्कृत ही का अशुद्ध स्वरूप प्राकृत है। इसके विरोध में कुछ लोगों का यह कहना

कि प्राकृत के सब शब्द संस्कृत से ही सिद्ध नहीं होते इसलिये उसकी जननी संस्कृत नहीं है। यह कहना ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि आज भी कुछ शब्द ऐसे देखने में आते हैं जिनका मूल मालूम है, पर उनमें इतना परिवर्तन हो गया है कि उनके मूल शब्द का अनुमान भी नहीं होता। जैसे—'हू कम्स देअर' के स्थान में 'हुकुमदर' या 'हुकुम सदर', 'सिगनल' के स्थान में 'सिकन्दर', 'कृष्णाष्टमी' के स्थान में 'किसुन आँठी' (यह बोली नेपाल की तराई के पास सुनने में आती है) 'इजलास' के स्थान में 'गिलास' और 'सेवासमिति' के स्थान में 'सेवा सपाठी' कहते हुए लोग देखने में आते हैं। इन उदाहरणों से यह अनुमान किया जाता है कि संस्कृत ही प्राकृत की जननी है। कुछ शब्द जो सिद्ध नहीं होते इसका कारण यह है कि उनमें बहुत परिवर्तन हो गया है। जब प्राकृत के प्रायः सभी शब्दों के मूल का पता संस्कृत से लग जाता है तब थोड़े शब्दों के न मिलने के कारण प्राकृत को स्वतन्त्र मानना ठीक नहीं है।

विक्रमोर्वशीय में अपभ्रंश के जो पद्य आये हैं, उनके विषय में कुछ लोगों का कथन है कि वास्तव में ये पद्य पहले के नहीं हैं, बाद में जोड़े गये हैं। इसके प्रमाण में वे कहते हैं कि राजा उत्तम पात्रों में गिना जाता है। उत्तम पात्रों की बोली संस्कृत है। इसके अतिरिक्त एक ही पद्य की कई बार आवृत्ति की गई है, जिससे ज्ञात होता है कि ये पीछे से जोड़े गये हैं। परन्तु यह बात नहीं है। यद्यपि राजा उत्तम पात्रों में है और इसकी बोली संस्कृत है तो भी कार्यवश वह अन्य भाषाओं को भी बोल सकता है। आज भी हम सभ्य-समाज में यदि शिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं तो आवश्यकता पड़ने पर साधारण जनों से ग्राम्य बोलियों में भी बात करना नहीं छोड़ते। पुरूरवा ने अपनी प्रिया के लिए आकुल होकर हाथी, भौंरे, चक्रवाक आदि से कहा था। उन्होंने समझा होगा कि विना महाराष्ट्री तथा अपभ्रंश में बोले वे लोग समझेंगे नहीं, और नहीं समझने के कारण कदाचित्

उत्तर नहीं दे सकेंगे। इसलिये लाचारीवश ही उन्होंने प्राकृत का आश्रय लिया होगा, इसमें संदेह नहीं। एक ही बात की आवृत्ति भी साधारण बात है। जब किसी को उत्तर नहीं मिलता तो वह पुनः-पुनः उसी प्रश्न को दुहराता ही है। इसलिए मेरे विचार से ये पद्य पीछे के नहीं हैं।

प्राकृत के वैयाकरणों के दो वर्ग हैं---एक त्रिविक्रम का और दूसरा मार्कण्डेय का। त्रिविक्रम के अनुयायी हेमचन्द्र, लक्ष्मीधर और सिंहराज हैं। लक्ष्मीधर ने त्रिविक्रम के सूत्रों पर अपनी वृत्ति लिखी है जैसे पाणिनि के सूत्रों पर वामन, माधव आदि कितने ही वृत्तिकारों की वृत्तियाँ रची गई हैं। लक्ष्मीधर के ग्रन्थ का नाम षड्भाषाचन्द्रिका है। मार्कण्डेय के अनुयायी वररुचि हैं। पहले लिखा जा चुका है कि किस ग्रन्थ में किन-किन प्रकार की प्राकृतों का वर्णन मिलता है।

सब वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को प्रधान मान कर सर्वप्रथम उसी का निरूपण किया है अतः यहाँ भी प्रस्तुत प्राकृत व्याकरण के विद्वान् लेखक ने पहले महाराष्ट्री के ही लक्षण दिये हैं। उसके बाद शौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश के भी विशेष-विशेष नियम बतला दिये गये हैं, जिनसे शब्दों के निर्वचन के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना अतिशय सरल हो गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरी ही प्रेरणा से श्रीसोमेश्वरनाथ संचालक मण्डल, अरेराज (चम्पारन) के अनुसन्धान विभाग की ओर से पूर्ण परिश्रम एवं खोज के साथ निर्मित हुआ है। इसके लेखक ने इस ग्रन्थ को अरेराज जैसे साधनहीन स्थान में, जहाँ न कोई अच्छा पुस्तकालय ही है और न सुयोग्य परामर्शदाता ही, अकेले जुटकर इस ग्रन्थ का इस रूप में निर्माण किया है। एतदर्थ विद्वान् लेखक को इस सम्बन्ध में जितनी भी बधाई दी जाय, थोड़ी होगी।

संभव है इस पुस्तक में कुछ लोगों को अपूर्णता दिखलाई दे, किन्तु जितना भर लिखा जा चुका है, उतने से ही हिन्दी द्वारा प्राकृत पढ़ने वाले छात्रों का अतिशय उपकार होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

मुझे अपने छात्र-जीवन में हिन्दी में एक प्राकृत व्याकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। आज उस इच्छा की पूर्ति से मुझे बड़ी प्रसन्नता है। इस ग्रन्थ के लिखने में लेखक को उत्साहित करनेवालों में मेरे अतिरिक्त तिरहुत प्रमण्डल के आयुक्त श्री श्रीधर वासुदेव सोहोनी तथा चम्पारन के कर्मठ-साहित्यिक श्री गणेश चौबे रहे हैं। अतः ये दोनों ही महानुभाव मेरे लिए धन्यवादार्ह हैं।

ग्रन्थों के न मिलने से जो कठिनाइयाँ आईं, उन्हें बहुत कुछ बिहार रिसर्च सोसाइटी पटना, धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय मुजफ्फरपुर एवं सोमेश्वरनाथ संस्कृत महाविद्यालय अरेराज के पुस्तकालयों ने दूर किया है, अतः इन संस्थाओं के अध्यक्ष भी धन्यवादार्ह हैं।

भुवनारायण त्रिपाठी

विषय-प्रवेश

प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र के अनुसार 'प्रकृति' (= संस्कृत) से प्राकृत शब्द की निष्पत्ति मानी गई है। 'प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।' अर्थात् जिसकी उत्पत्ति संस्कृत में हुई हो अथवा संस्कृत से निकलकर जो अलग निर्मित हुआ हो वही प्राकृत* है।

कुछ भाषा-शास्त्री 'प्रकृत्या (स्वभावेन) सिद्धं प्राकृतम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्वभावसिद्ध को ही 'प्राकृत' मानते हैं।

---

* देखिए—हेम० ८. १. १. अथ प्राकृतम् और उसी सूत्र पर शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित का अंग्रेजी नोट—Hemachandra's system of grammar consists of eight chapters; the first seven deal with Sanskrit grammar and the last chapter with six dialects of Prakrit, viz., महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची and अपभ्रंश. The word Prakrit is derived from प्रकृति which according to the auther, means Sanskrit. Hemachandra classifies Prakrit words into तद्भव, तत्सम, and देशी. He does not treat of तत्सम here as he has already done so in the preceding chapters. He does not speak of देशी words here but discusses only तद्भव words of both types, सिद्ध and साध्यमान।

विवादग्रस्त* इन दोनों व्युत्पत्तियों को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। किन्तु हम यहाँ हेमचन्द्रवाली व्युत्पत्ति को ही मानकर चलेंगे।

अब आगे चलकर हम नियम, उदाहरण, विशेष तथा पादटिप्पणी के सम्मिलित क्रमों से प्राकृत शब्दों की निरुक्ति का प्रयास करेंगे।

(१) लोक में प्रचलित वर्णसमाम्नाय ही प्राकृत में भी गृहीत है, किन्तु नीचे लिखे ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ ये पाँच स्वर वर्ण और ङ, ञ, श, ष, न, य ये छ व्यञ्जन प्राकृत में नहीं होते†। हाँ, अपने वर्गवाले अक्षरों से संयुक्त ङ और ञ का व्यवहार देखने को मिलता है। जैसे—पङ्को (पङ्कः), सङ्खो (शङ्खः), सङ्का (शङ्का), कञ्चुओ (कञ्चुकः), वञ्जनं (वञ्चनम्)।

---

* इस सम्बन्ध में श्रीहृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य के संस्कृत-इङ्गलिस प्राकृत व्याकरण (१८८३ ई०) के प्रिफेस की नीचे उद्‌धृत पङ्क्तियाँ प्रकाश डालतीं हैं—Modern philologist have not yet satisfactorily solved the question whether these dialects are derived directly from the Sanskrit or (through) some of its corruptions. It is contended by some that Pali was the medium through which all the Prakrit dialects come into existence.

† हेमचन्द्र के अनुसार ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ऐ औ ये छ स्वर और ङ, ञ, श, ष, विसर्जनीय और प्लुत प्राकृत के वर्ण-समाम्नाय में नहीं होते। किन्हीं-किन्हीं शब्दों में हेमचन्द्र के अनुसार ऐ और औ भी देखे जाते हैं। जैसे—कैअवं (कैतवम्), सौअरिअं (सौन्दर्यम्) कौरवा (कौरवाः)

(२) भिन्न वर्गवाले व्यञ्जन वर्णों का परस्पर संयोग नहीं होता अर्थात् त्+क, प्+क, क्+त, क्+य, क्+र, क्+ल, ल्+क और क्+व इनका परस्पर संयोग न होकर केवल 'क्क' रूप ही होता है। उसी तरह ड्+ग, द्+ग, ग्+न, ग्+य, ग्+र, र्+ग और ल्+ग का परस्पर संयोग न होकर केवल ग्ग रूप ही रहता है। जैसे—उक्कंठा (उत्कण्ठा), अक्कँवलं (अप्कमलम्), णक्कंचरो (नक्तञ्चरः), जण्णवक्केण (याज्ञवल्क्येन), सक्को (शक्रः), विक्कवो (विक्लवः), उक्का (उल्का), पिक्कं (पक्कम्), खग्गो (खड्गः), अग्गिणी (अग्नीन्), जोग्गो (योग्यः), कअग्गहो (कचग्रहः), मग्गो (मार्गः) वग्गा (वल्गा)।

विशेष—इसी तरह दूसरे भिन्नवर्गीय वर्णों के बारे में भी जानना चाहिए। जैसे—सत्तावीसा (सप्तविंशतिः), कण्णउरं (कर्णपुरम्)

(३) वर्ग के पाँचवें अक्षरों का अपने वर्ग के अक्षरों के साथ भी कहीं-कहीं संयोग देखा जाता है, किन्तु सर्वत्र नहीं। यथा—अङ्को (अङ्कः), इङ्गालो (अङ्गारः), तालवेण्टं (तालवृन्तम्), वञ्चणीयम् (वञ्चनीयम्), फन्दनं (स्पन्दनम्), उम्बरं (उदुम्बरम्)

(४) प्राकृत में ऐसा व्यञ्जन नहीं मिलता जो (संस्कृत के यावत्, तावत्, ईषत् के तकार के समान) स्वर-रहित हो।

(५) प्राकृत में प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, कारक, समाससंज्ञा आदि संस्कृत के समान ही होते हैं।

(६) प्राकृत में द्विवचन नहीं होता। इसी प्रकार संप्रदान कारक में आनेवाली चतुर्थी विभक्ति भी प्राकृत में नहीं होती है। हिन्दी और अंग्रेजी की तरह द्विवचन का काम बहुवचन

से और चतुर्थी का काम षष्ठी से पूरा कर लिया जाता है*। द्विवचन के बदले बहुवचन का उदाहरण जैसे—वच्छा चलन्ति (वत्सौ चलतः); चतुर्थी के बदले षष्ठी जैसे—विप्पस्स देहि (विप्राय देहि)

(७) समास में कभी-कभी दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर के रूप में और ह्रस्व स्वर दीर्घ स्वर के रूप में बदलता हुआ देखा जाता है। दीर्घ का ह्रस्व जैसे—जहट्ठिअं (यथा स्थितम्), अंतावेइ (अन्तर्वेदी); ह्रस्व का दीर्घ जैसे—सत्तावीसा (सप्तविंशतिः)।

(८) कभी-कभी दीर्घ और ह्रस्व के क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ रूप समास में विकल्प से होते देखे जाते हैं। जैसे—णइसोत्तं, णईसोत्तं (नदीस्रोतः), बहुमुहं बहूमुहं (वधूमुखम्), पिअापिअं, पीआपीअं (प्रियाप्रियम्)

विशेष :—कभी कभी स्वरों के उक्त परिवर्तन नहीं भी देखे जाते हैं। जैसे—जुवइ-अणो (युवतिजनः)

(९) दो पदों में सान्निध्य रहने पर संस्कृत के लिए विहित कुल सन्धि-कार्य प्राकृत में विकल्प से किये जाते हैं। जैसे—वास+इसी, वासेसी (व्यासर्षिः); दहि+ईसरो, दहीसरो (दधीश्वरः)

---

* देखिए वररुचिसूत्र द्विवचनस्य बहुवचनम् ६.३३. और चतुर्थ्याः षष्ठी ६.६४. अर्द्धमागधी में चतुर्थी देखी जाती है। जैसे—अधम्माय कुज्झइ (अधर्माय क्रुध्यति), संसाराए सुखं (संसाराय सुखम्), अट्ठाए दण्डो (अर्थाय दण्डः) इत्यादि।

विशेष :—(क) एक पद में सन्धि-कार्य नहीं होता। जैसे—
पाओ (पादः), पई, वच्छाओ, मुद्धाए इत्यादि।
(ख) कहीं कहीं एक पद में भी शब्दों के स्वभाव-वश सन्धि होती देखी जाती है। जैसे—काहिइ, काही; बिइओ, बीओ।

(१०) 'इ' और 'उ' का विजातीय स्वर के साथ कभी सन्धि-कार्य नहीं होता। जैसे—विअ (इव), महुइँ (मधूनि), न वेरिवग्गे वि अवयासो* (न वैरिवर्गेऽप्यवकाशः), दणु इन्दरुहिरलित्तो† (दनुजेन्द्ररुधिरलिप्तः)

(११) सजातीय स्वर के साथ सन्धि हो जाती है। जैसे—पुहवी+ईसो=पुहवीसो (पृथिवीशः); कुलूद+अहिपो=कुलूदाहिपो (कुलूताधिपः)।

(१२) 'ए' और 'ओ' के आगे यदि कोई स्वर वर्ण हो तो उनमें सन्धि नहीं होती है। जैसे—देवीए+एत्थ, एओ+एत्थ (देव्या अत्र, एकोऽत्र); वहुआइ नहुल्लिहणे आबन्धन्तीएँ कञ्चुअं अङ्गे (बध्वा नखोल्लेखने आबध्नत्या कञ्चुकमङ्गे), तं चेव मलिअ विसदण्ड विरसमालक्खिमो एण्हि (तदेव मृदित-विसदण्डविरसमालक्षयामह इदानीम्)

---

* भीय परित्ताणमइं पइण्ण मसिणो तुहाधिरूढस्स।
(भीतपरित्राणमयीं प्रतिज्ञामसेस्तवाधिरूढस्य।)
मन्ने संकाविहुरे न वेरिवग्गे वि अवयासो।
(मन्ये शङ्काविधुरे न वैरिवर्गेऽप्यवकाशः॥)

† दणु इन्द रुहिरलित्तो सहइ उइन्दो नहप्पहावलि-अरुणो।
(दनुजेन्द्ररुधिरलिप्तः शोभते उपेन्द्रो नखप्रभावल्ल्यरुणः)

(१३) व्यञ्जनघटित स्वर से व्यञ्जन का लोप हो जाने पर जो स्वर बँचा रह जाता है उसे प्राकृत के वैयाकरण लोग **'उद्वृत्त'** कहते हैं। कोई भी 'उद्वृत्त' स्वर किसी भी स्वर के साथ सन्धि-कार्य को नहीं प्राप्त करता है। जैसे—गन्ध-उडिं (गन्धकुटीम्), निसाअरो (निशाचरः), रयणीअरो (रजनीचरः)

विशेष :—कहीं कहीं इस नियम के प्रतिकूल उद्वृत्त स्वर का दूसरे स्वर के साथ सन्धिकार्य विकल्प से होता है। और कहीं कहीं सन्धि अवश्य होती है। विकल्प से जैसे—सुउरिसो, सूरिसो (सुपुरुषः); नित्य जैसे—चक्काओ (चक्रवाकः), सालाहणो (सातवाहनः)

(१४) 'तिप्' आदि प्रत्ययों के स्वर किसी भी स्वर के साथ सन्धि-कार्य प्राप्त नहीं करते हैं। जैसे—होइ इह (भवतीह)

(१५) किसी स्वर वर्ण के पर में रहने पर उसके पूर्व के स्वर (उद्वृत्त अथवा अनुद्वृत्त) का वैकल्पिक लुक् होता है। जैसे—तिअस (त्रिदश) के सकार के आगेवाले अकार (अनुद्वृत्त) का 'ईसो' (ईशः) के ई के पर में रहने पर लुक् हो गया। अब स् और ई के मिल जाने से 'तिअसीसो' हुआ। वैकल्पिक होने के कारण 'तिअस ईसो' भी होता है। इसी प्रकार 'राउलं' (उद्वृत्त अस्वर का लुक्) और राअ-उलं (राजकुलम्) भी जानना चाहिए।*

---

* तुलना कीजिए—अण्णावअणुक्कण्ठो (आज्ञावचनोत्कण्ठः) अभि० शा०, २ अं.), सलिलसेअसंभमुग्गदो (सलिलसेकसंभ्रमोद्गतः) अभि० शा०, २ अं.।

विशेष :—(क) शौरसेनी आदि प्राकृत के अन्य भेदों में उक्त नियम लागू नहीं होता।

(ख) प्राकृत प्रकाश के अनुसार किसी भी संयुक्ताक्षर के पूर्व में वर्तमान स्वर से पूर्ववर्ती स्वर का सब जगह लोप होना माना जाता है। जैसे—णत्थि (नास्ति)

(१६) शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का सर्वत्र लुक् होता है। जैसे-

प्राकृत	संस्कृत
जाव	यावत्
ताव*	तावत्
जसो†	यशः
णहं‡	नभः
सिरं	शिरः

विशेष :—समास में उक्त नियम विकल्प से होता है। सभिक्खू (लुक्) सज्जणो (अलुक्)

(१७) 'श्रत्' और 'उत्' इन दोनों के अन्त्य व्यञ्जन का लुक् नहीं होता। जैसे—सद्धा (श्रद्धा); उण्णयं (उन्नयम्)

(१८) 'निर्' और 'दुर्' के अन्तिम व्यञ्जन र् का लुक् विकल्प से होता है। जैसे—निस्सहं (लुगभाव), नीसहं (लुक्); दुस्सहो (लुगभाव), दूसहो (लुक्)। सं. निस्सहम्, दुस्सहः।

---

* शौरसेनी में दाव होता है।

† नसान्तप्रावृट्सरदः पुंसि। वर. सू. ४.१८. नान्त, सान्त प्रावृष् और सरद् शब्दों का प्रयोग पुंल्लिङ्ग में होता है।

‡ न सिरोनभसी। वर० सू० ४.१९. शिरस् और नभस् शब्दों के पुंल्लिङ्ग में प्रयोग का निषेध है।

(१९) स्वर वर्ण के पर में रहने पर 'अन्तर्' 'निर्' और 'दुर्' के अन्त्य व्यञ्जन (रेफ) का लुक् नहीं होता। जैसे—अन्तरप्पा (अन्तरात्मा), अन्तरिदा* (अन्तरिता), नि (णि) रुत्तरं† (निरुत्तरम्) णिराबाधं‡ (निराबाधम्), दुरुत्तरं (दुरुत्तरम्) दुरागदं§ (दुरागतम्)।

विशेष:—कहीं कहीं 'निर्' के रेफ् का लुक् देखा भी जाता है। जैसे—मुद्राराक्षस के पाँचवें अङ्क में क्षपणक कहता है 'ता जइ भाउराअणस्स मुद्दालंच्छिदोऽसि तदो गच्छ वीसत्थो, अरणधा णिबत्तिअ णिउक्कण्ठं£ चिट्ठ। (तद् यदि भागुरायणस्य मुद्रालाञ्छितोऽसि तदा गच्छ विश्वस्तः। अन्यथा निवृत्य निरुत्कण्ठं तिष्ठ।)

---

* तेन हि लदाविडवन्तरिदा सुणिस्सं (तेन हि लताविटपान्तरिता श्रोष्ये।) विक्र० अ० २ में देवीवचन।

† वअस्स, णिरुत्तरा एसा (वयस्य, निरुत्तरा एषा) विक्र० अ० ३. में चित्रलेखावचन।

‡ इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि (अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति।) अभि० शा०, अ० ३. में गौतमीवचन।

§ दुरागदं दाणिं संवुत्तं (दुरागतमिदानीं संवृत्तम्) विक्र० अ० २. में देवीवचन।

£ वररुचि के (३.१) मत से क्, ग्, ड्, त्, द्, प्, ष्, स् यदि संयोग के आदि में हों तो उनका लोप हो जाता है। और

(२०) विद्युत् शब्द को छोड़कर स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान सभी व्यञ्जनान्त शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का आत्व होता है। जैसे— सरिआ (सरित्); संपआ (संपद्); वाआ* (वाक्); अच्छरा† (अप्सरः)

उन्हीं के अन्य सूत्र (३. ५०) के अनुसार आदि में नहीं रहनेवाले जो संयुक्त के शेष अथवा आदेशभूत अक्षर हों उनका द्वित्व माना गया है। इस प्रकार उत्कण्ठा में त् का लोप और क् का द्वित्व करके 'उक्कण्ठा' बनता है। उत्पातः का 'उप्पाओ' बनता है। यह प्रकार उत्तम है। प्राकृतप्रकाश में दूसरे भी लोपविधायक सूत्र देखे जाते हैं। जैसे—(१) **उदुम्बरे दोर्लोपः। वर०** २. ४ उदुम्बर शब्द में दु का लोप होता है। उंबरं (उदुम्बरम्) (२) **कालायसे यस्य वा। वर०** ३. ४ कालायस में य का लोप विकल्प से होता है। कालासं- काला-असं (कालायसं) (३) **भाजने जस्य। वर०** ४. ४ भाजन शब्द में ज का वैकल्पिक लोप होता है। भाणं, भाअणं (भाजनम्) (४) **यावदादिषु वस्य। वर०** ५. ४ यावत् प्रभृति शब्दों में 'व' का वैकल्पिक लोप होता है। जा, जाव; ता, ताव; पाराओ, पारावओ; अनुत्तन्तो, अनुवत्तन्तो; जीअं, जीविअं; एअं एव्वं; एअ एव्व; कुलअं, कुवलअं; (यावत्, तावत्, पारावतः, अनुवर्तमानः, जीवितम् एवं, एव, कुवलयम्)

* एत्तिअं जेव्व अत्थि मे **वाआच्छलं** (एतावदेवास्ति मे वाक्छलम्) मुद्रा० अ० १. में चन्दनदासवचन। णत्थि में **वाआविहवो** (नास्ति मे वाग्विभवः) विक्र० अ० २ में उर्वशीवचन।

† सहि, **अच्छरावावारपज्जाएण** तत्र भअदो सुज्जस्स उवट्ठाणे वट्टंती (सखि, अप्सरोव्यापारपर्यायेण तत्र भवतः सूर्यस्योपस्थाने वर्तमाना) विक्र० अ० ४ में चित्रलेखावचन।

विशेष—(क) यह नियम इसी अध्याय के नियम १६ का अपवाद है।

(ख) विद्युत् शब्द का प्राकृत रूप विज्जू होता है।

(ग) उक्त नियम से जो आ होता है, उसका उच्चारण कभी-कभी ईषत्स्पृष्टतर या के के समान भी होता है। सरिया, पाडिवया, संपया।

(घ) अप्सरस् का एक रूप अच्छरसा भी होता है।

(२१) स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान रेफान्त शब्द के अन्तिम र् का रा आदेश होता है। जैसे—धुरा*, गिरा†, पुरा (धूः, गीः, पूः)

(२२) 'क्षुध्' शब्द के अन्त्य व्यञ्जन का 'हा' आदेश होता है। जैसे—छुहा (क्षुत्)

(२३) 'शरत्' प्रभृति शब्दों के अन्तिम व्यञ्जन के स्थान में 'अ'‡ आदेश होता है। जैसे—सरअ,§ भिसअ (शरत्, भिषक्)

---

* दुव्वोज्झा वि अवलम्बिआ कज्जधुआ। राव० ४.४४

† पासम्मि ठिआ तस्स य महूअगोरीओ महुअमहुरगिरा। (पार्श्वे स्थिताः तस्य याः मधूकगौर्यो मधूकमधुरगिरः।) कुमा० पा० १. ७५

‡ प्राकृत प्रकाश के 'शरदो दः' वर० सू० ४. १० के अनुसार शरत् के अन्तिम व्यञ्जन का 'द्' आदेश' होता है। इसके अनुसार शरत् के लिए 'सरअ' न होकर 'सरदो' रूप होता है।

§ सीआ वाह विहाओ दहमुहवज्झ दिअहो उवगओ सरओ राव० १. १६

(२४) 'दिश्' और 'प्रावृष्' शब्दों के अन्तिम व्यञ्जनों के स्थान में 'स' आदेश होता है। जैसे—दिसा,* पाउसो† (दिक्, प्रावृट्)

(२५) 'आयुष्' और 'अप्सरस्' के अन्त्य व्यञ्जनों का 'स' आदेश विकल्प से होता है । जैसे—दीहाउसो,‡ दीहाऊ, अच्छरसा,§ अच्छरा() (अप्सराः)

(२६) ककुभ् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन का ह आदेश होता है। जैसे—कउहा (ककुप्)

(२७) धनुष् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन के स्थान में ह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—धणुहं, धणू □ (धनुः)

(२८) अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होता है। जैसे—जलं, फलं, वच्छं, गिरिं पेच्छ (जलम्, फलम्, वत्सम्, गिरिम्, प्रेक्षस्व)।

---

* फुरइ फुरिअट्टहासं उद्धपडित्ततिमिरं मिव दिसा-अक्कं। रावण० १. ५

† दिसाण पाउस-किलन्ताण। (दिशां प्रावृट्क्लान्तानाम् ।) कुमा० पा० १. ६

‡ दीहाऊ वि अदीहाउसमाणी सइ विवेइ-जणो । (दीर्घायुरपि अदीर्घायुर्मानी सदा विवेकिजनः ।) कुमा० पा० १. १०.

§ जीअ-विढत्तच्छरसं। रावण० १३. ४७

() गअण-णिराअ-भिण्ण-घण भेसि अच्छरेहिं। रावण० ७. ४५

□ कुसुमधणू धणुहधरो कउहा-मुह-मण्डणम्मि चन्दंमि। (कुसुमधनुर्धनुधरः ककुम्मुखमण्डने चन्द्रे ।) कुमा० पा० १. ११

(२९) कहीं-कहीं अनन्त्य मकार का वैकल्पिक रूप से अनुस्वार होता है। जैसे—वणम्मि, वणंमि (वने)

(३०) स्वर के पर में रहने पर अन्त्य मकार का अनुस्वार विकल्प से होता है। जैसे—फलं अवहरइ, फलमवहरइ (फलमवहरति)

विशेष—अनुस्वार के अभाव पक्ष में म् का म् ही रह गया। लुक् का अपवाद होने से लुक् (१.१६) नहीं हुआ।

(३१) कभी-कभी 'म्' के अतिरिक्त दूसरे व्यञ्जनों के स्थान में भी पाक्षिक मकार होता देखा जाता है। जैसे—वीसुं*, पिहं, सम्मं, सक्खं, जं, तं, (विष्वक्, पृथक्, सम्यक्, साक्षात्, यत्, तत्,)

(३२) व्यञ्जन वर्णों के पर में रहने पर ङ् ञ् ण् न् के स्थान में अनुस्वार होता है। जैसे—पंत्ती, परंमुहो, कंचुओ, वंचणं; संमुहो, उक्कंठा; कंसो, अंसो (पङ्क्तिः, पराङ्मुखः, कञ्चुकः, वञ्चनम्; षण्मुखः, उत्कण्ठा; कंसः, अंशः)

(३३) वक्रप्रभृति† शब्दों में कहीं प्रथम, कहीं द्वितीय तथा कहीं तृतीय स्वर के आगे अनुस्वार का आगम होता है।

---

* वीसुं वासा-नीसित्त-महि-अले ऊस-मालि-तेअस्स (विष्वग्वर्षानिषिक्तमहीतले उस्रमालितेजसः । कुमार पा० १.३२.

† वक्रत्र्यस्रवयस्याश्रु श्मश्रुपुच्छातिमुक्तकौ ;
गृष्टिर्मनस्विनी स्पर्शश्रुतप्रतिश्रुतं तथा ।
निवसनं दर्शनञ्चैव वक्रादिष्वेवमादयः ॥

(प्राकृतकल्पलतिका के अनुसार वक्रादि गण । यह गण आकृति गण माना जाता है।)

जैसे—वंकं (वक्रम्), तंसं (त्र्यस्रम्), अंसुं (अश्रु), मंसू (श्मश्रु) पुंछं (पुच्छम्) गुंछं (गुच्छम्), मुंढा अथवा मुंडं (मूर्द्धा), फंसो (स्पर्शः), बुंधो (बृध्नः), कंकोडो (कर्कोटः), कुंपलं (कुट्मलं अथवा कुड्मलम्), दंसणं (दर्शनम्) विंछिओ (वृश्चिकः), गिंठी अथवा गुंठी (गृष्टिः) मंजारो (मार्जारः)* वयंसो (वयस्यः), मणंसिणी (मनस्विनी), मणंसिला (मनःशिला), पडिंसुदं (प्रतिश्रुतम्), पडिंसुआ (प्रतिश्रुत्)† उवरिं (उपरि), अहिमुंको (अभिमुक्तः) अणिउँतयं, अइमुंतयं (अतिमुक्तकम्)‡

(३४) क्त्वा एवं स्यादि के ण और सु के आगे विकल्प से अनुस्वार आता है।

क्त्वा के आगे जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
काउणं (अनुस्वार), काऊण (अनुस्वार का अभाव)	कृत्वा
स्यादि के ण के आगे जैसे—	
वच्छेणं (अनुस्वार), वच्छेण (अनु० का अभाव)	वृक्षेण
स्यादि के सु के आगे जैसे—	
वच्छेसुं (अनुस्वार), वच्छेसु (अनु० का अभाव)	वृक्षेषु

---

* वंकं से मंजारो तक प्रथम स्वर के आगे अनुस्वार का आगम हुआ है।

† वयंसो से पडिंसुआ तक शब्दों में द्वितीय स्वर के आगे अनुस्वार का आगम होता है।

‡ उवरिं से अइमुंतयं तक शब्दों में तृतीय स्वर के आगे अनुस्वार का आगम होता है।

(३५) विंशति प्रभृति* शब्दों के अनुस्वार का लुक् होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
वीसा	विंशतिः
तीसा	त्रिंशत्
सक्कअं	संस्कृतम्
सक्कारो	संस्कारः
सत्थुअं	संस्तुतम्

(३६) मांसादि गण† में अनुस्वार का लुक् विकल्प से होता है। जैसे—

(क) प्रथम स्वर के आगे अनुस्वार का लुक्—

प्राकृत	संस्कृत
मासं, मंसं	मांसम्
मासलं, मंसलं	मांसलम्
कि, किं,	किम्

---

* विंशत्यादि गण में विंशति, त्रिंशत्, संस्कृत, संस्कार और संस्तुत शब्द गृहीत हैं।

† मांसादि गण के विषय में प्राकृतप्रकाश में यों लिखा गया है—'यत्र क्वचित् वृत्तभङ्गभयात् त्यज्यमानः क्रियमाणश्च विन्दुर्भवति स मांसादिषु द्रष्टव्यः।' अर्थात् छन्दोभङ्ग के भय से जिस किसी शब्द में अनुस्वार छोड़ा जाता या गृहीत होता है, वह शब्द मांसादि गण में माना जाता है।

प्राकृत	संस्कृत
कासं, कंसं	कांसम्
सीहो, सिंघो	सिंहः
पासू, पंसू	पांसुः (शुः)

(ख) द्वितीय स्वर के आगे अनुस्वार का लुक्—

प्राकृत	संस्कृत
कह, कहं	कथम्
एव, एवं	एवम्
नूण, नूणं	नूनम्

(ग) तृतीय स्वर के आगे अनुस्वार का लुक्—

प्राकृत	संस्कृत
इआणि, इआणिं	इदानीम्
समुहं, संमुहं	सम्मुखम्
केसुअं, किंसुअं	किंशुकम्

(३७) वर्गों का यदि कोई अक्षर पर में हो तो पूर्व के अनुस्वार के स्थान में पर अक्षर के वर्ग का पञ्चम अक्षर विकल्प से होता है। क, ख, ग, घ के पर में जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
पङ्को, पंको	पङ्कः
सङ्खो संखो	शङ्खः
अङ्गणं, अंगणं	अङ्गनम्
लङ्घणं, लंघणं	लङ्घनम्

च, छ, ज, झ के पर में जैसे—

कञ्चुओ, कंचुओ	कञ्चुकः
लञ्छणं, लंछणं	लाञ्छनम्
व्यञ्जिअं, वंजिअं	व्यञ्जितम्
सञ्झा, संझा	सन्ध्या

ट, ठ, ड, ढ के पर में जैसे—

कण्टओ, कंटओ	कण्टकः
उक्कण्ठा, उक्कंठा	उत्कण्ठा
कण्डं, कंडं	काण्डम्
सण्ढो, संढो	षण्ढः

त, थ, द, ध के पर में जैसे—

अन्तरं, अंतरं	अन्तरम्
पन्थो, पंथो	पन्थाः
चन्दो, चंदो	चन्द्रः
वन्धवो, बंधवो	बान्धवः

प, फ, ब, भ के पर में रहने पर जैसे—

कम्पइ, कंपइ	कम्पते
वम्फइ, वंफइ	काङ्क्षति
कलम्बो, कलंबो	कलम्बः
आरम्भो, आरंभो	आरम्भः

विशेष :—(क) पर में वर्ग का अक्षर नहीं रहने से किंसुओं और संहरइ में उक्त नियम लागू नहीं हुआ।

(ख) प्राकृत के अन्य वैयाकरण उक्त नियम को वैकल्पिक न मान कर नित्य मानते हैं।

लिङ्गानुशासन

(३८) प्रावृष्, शरद् और तरणि शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे—पाउसो,* सरओ,† तरणी‡

(३९) दामन्, शिरस् और नभस् से वर्जित सकारान्त तथा नकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

सान्त जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
जसो□	यशः
पओ()	पयः
तमो§	तमः
तेओ△	तेजः
सरो×	सरः

---

* जइआ गिम्हो पयहओ तइअ च्चिअ किर आसि पाउसो। कुमा० पा० ४. ७८

† दहमुह-वज्झ-दिअहो उवगओ सरओ। रावण० १. १६

‡ न जत्थ दीसइ फुडो तरणी। कुमार० पा० १. २१

□ पारोहो व्व खुडिओ महेन्दस्स जसो। रावण० १. ४

() धीरअं सइ मुहल-घण-पअ-विज्जन्तअं। रावण० २. २४

§ णह-णिहं तमेण व चउद्दिसं भाविअं। रावण० २. २३

△ देखिए १. ३१ की पादटिप्पणी।

× अमुणा सरेण हंसाण माणसं तं पि विम्हरिअं। कुमा० पा० ५. ६५

नान्त जैसे—

जम्मो*	जन्म
नम्मो†	नर्म
कम्मो][	कर्म
वम्मो[]	वर्म

(४०) दामन्, शिरस् और नभस् शब्द नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—दामं() (दाम), सिरं§ (शिरः), नहं× (नभः)

विशेष :—(क) यह नियम पूर्व नियम (१. ३९) में प्रतिषिद्ध दामन् आदि तीनों शब्दों के लिङ्ग का बोधन करता है।

(ख) नीचे लिखे उदाहरणों में भी उक्त १. ३९ नियम प्रवृत्त नहीं होता है। अर्थात् नपुंसकत्व हो जाता है। जैसे—

---

* सहलो **जम्मो** सभलं च जीविअं ताण देव फणि-चिन्ध। कुमा० पा० २. ५६

† इअ **नम्म-पङ्क** जल-पाण-रई। कुमा० पा० ४. ३३

[] काही सउहे गमणं **संझा-कम्मं** च काहीअ। कुमा० पा० ५; ८७

][अग्घिअवम्मा (राजितवर्माणः) छज्जिअ सिरक्कया। कुमा० पा० ६. ६३

() गलिअं घण-लच्छि-रअण-रसणा-**दामं**। रावण० १. १८

§ उण्णामिअं णाणु सिरं जाअं। रावण० ४. ५६

× थाण-प्फिडिअ-सिढिलं **पडन्तं** व **णहं**। रावण० ४. ५४

वयं* (वयः), सुमणं† (सुमनः), सम्मं‡ (शर्म), चम्मं[] (चर्म)

(४१) अक्षि (आँख) के समानार्थक शब्द तथा निम्न निर्दिष्ट वचनादि()गण के शब्द पुल्लिङ्ग में विकल्प से प्रयुक्त होते हैं। अक्षि शब्द का पाठ अञ्जल्यादि गण में भी किया गया है, इसलिए स्त्रीलिङ्ग में भी उसका प्रयोग होता है। जैसे—

प्राकृत		संस्कृत
अच्छी§	(पुलिङ्ग)	अक्षिणी
अच्छीइं][	(नपुंसक)	अक्षिणी
एसा अच्छी	(स्त्रीलिङ्ग)	एतदक्षि
चक्खू (पुल्लिङ्ग)	}	चक्षुषी
चक्खूइं (नपुंसक)	}	
णअणो (पुल्लिङ्ग)	} △	नयनम्
णअणं (नपुंसक)	}	

*. † सव्ववयाणं मज्झिमवयं व सुमणाण जाइ सुमणं वा। कुमा० पा० १. २३

‡ सम्माण मुत्ति-सम्मं न पुहइ-नयराण जं सेयं। कुमा० पा० १.२३

[] चम्मं जाण न अच्छी। कुमा० पा० १. २४

(वचनादि गण में वचन, कुल, माहात्मा दुःख, छन्दस्, विज्जु आदि शब्द गृहीत हैं।

§ अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी। (अद्यापि सा शपति तेऽक्षिणी)

][नच्चावियाइँ तेणम्ह अच्छीइं (नर्तितानि तेनास्माकमक्षीणि)

△ शाकल्यः शरदं स्त्रीत्वे क्लीबे नान्तञ्च कुण्डिनः। पुंक्लीबयोस्तथाख्यातं नयनादि तथा परैः। कल्पलतिका।

विअसन्ति जत्थ नयणाकि पुण अन्नाण नयणाइं, कुमा० पा० १.२४.

लोअणो (पुल्लिङ्ग)
लोअणं (नपुंसक) } * लोचनम्

वअणो (पुल्लिङ्ग)
वअणं (नपुंसक) } † वचनम्

कुलो (पुल्लिङ्ग)
कुलं (नपुंसक) } कुलम्

माहप्पो
माहप्पं } ‡ माहात्म्यम्

(४२) किसी किसी आचार्य के मत से पृष्ट, अक्षि और प्रश्न शब्द विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—पुट्ठी, पुट्ठं (पृष्ठम्); अच्छी, अच्छं (अक्षि), पण्हा, पण्हो (प्रश्नः)।

(४३) गुणादि() शब्द नपुंसक लिङ्ग में विकल्प से प्रयुक्त होते हैं। जैसे—गुणां□ गुणो (गुणाः); देवाणि, देवा (देवाः); खग्गां, खग्गो (खड्गः); मण्डलग्गं, मण्डलग्गो (मण्डलाग्रः); कररुहं, कररुहो (कररुह); रुक्खाइं, रुक्खा (वृक्षाः)

(४४) इमान्त (इमन् प्रत्यय जिसके अन्त में आया हो)

---

* विहसन्तहिओ विहसेन्त लोअणो। कुमा० पा० ५. ८४.

† गुरुणो वयणा वयणाइं। कुमा० पा० १. २५.

‡ नेत्र और कमल शब्दों का वचनादि में ग्रहण नहीं है। क्योंकि वे संस्कृत के अनुसार ही हैं।

() गुणादि में गुण, देव, विन्दु, खड्ग, मण्डलाग्र, कररुह, और वृक्ष शब्द गृहीत हैं।

□ विहवेहिं गुणाइं मग्गन्ति (विभवैर्गुणाःमृग्यन्ते) हेम० १.३४

और अञ्जल्यादि* गण के शब्द विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

इमान्त में जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
एसा गरिमा; एसो गरिमा	एष गरिमा
एसा महिमा; एसो महिमा†	एष महिमा

अञ्जल्यादि में जैसे—

एसा अंजली, एसो अंजली‡	एष अञ्जलिः
चोरिआ (स्त्री०), चोरिओ (पु०)	चौर्यम्
निही (स्त्री०), निही (पु०)△	निधिः
विही (स्त्री०), विही (पु०)	विधिः
गंठी (स्त्री०), गंठी (पु०)	ग्रन्थिः

(४५) जब वाहु शब्द स्त्री-लिङ्ग में प्रयुक्त होता है, तब उसके उकार के स्थान में आकार आदेश होता है। किन्तु जब

---

* अञ्जल्यादि गण में अञ्जलि, पृष्ठ, अक्षि, प्रश्न, चौर्य, कुक्षि, बलि, निधि, विधि, रश्मि और ग्रन्थि शब्द गृहीत है। रश्मिः स्त्रियां वेति कल्पलतिका। कल्पलतिकायां काश्मीरोष्म सीम शब्दाः पठिताः।

† एयाए महिमाए हरिओ महिमा सुर-पुरीए।

—कुमा० पा० १. २६

‡ जत्थञ्जलिणा कणयं रयणाइं वि अञ्जलीइ देइ जणो।

—वही। १. २७

△ कणय-निही अक्खीणो रयण-निही अक्खया तह वि।

—वही। १. २७

पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त होता है तब आकार आदेश न होकर बाहु रूप ही रह जाता है। जैसे एसा बाहा*; एसो बाहू† । (एष बाहुः)

(४६) संस्कृत व्याकरण के अनुसार जब किसी अकार के आगे विसर्ग आया हो, तो उस विसर्ग के स्थान में ओ आदेश हो जाता है और ओ के पूर्व के व्यञ्जन सहित अ का लोप होता है। जैसे—सव्वओ (सर्वतः); पुरओ (पुरतः); अग्गओ (अग्रतः); मग्गओ (मार्गतः)

विशेष :—यह सार्वत्रिक नियम नहीं है कि शब्द अकारान्त ही हो। अतः व्यञ्जनान्त शब्दों में भी उक्त नियम लागू हो जाता है। जैसे—भवओ (भवतः); भवन्तो (भवन्तः); सन्तो (सन्तः); कुदो (कुतः)

(४७) **माल्य** शब्द के पर में रहने पर **निर्** और **स्था** धातु के पर में रहने पर **प्रति** के स्थान में क्रमशः **ओत्** और **परि** आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—

प्राकृत	**संस्कृत**
ओमल्लं अथवा ओमालं (ओ) निम्मलं (ओ का अभाव)	निर्माल्यम्
परिट्ठा (परि आदेश) पइट्ठा (परि का अभाव)	प्रतिष्ठा

* तत्थ सिरि-कुमर-बालो बाहाए सव्वओ वि धरिअ-धरो।
—कुमा० पा० १. २८.

† बाहूसु सिला-अल-ढिएसु णिसण्णो। —रावण० ३. १.

परिट्ठिअं (परि आदेश)	प्रतिष्ठितम्
पइट्ठिअं (परि का अभाव)	

(४८) त्यद् आदि* सर्वनामों से पर में रहनेवाले अव्ययों तथा अव्ययों से पर में रहनेवाले त्यदादि के आदि स्वर का लुक् विकल्प से होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
अम्हेव्व(त्यदादि से पर अव्यय के आदि स्वर का लुक्)	वयमेव
अम्हे एव्व (लुक् का अभाव)	वयमेव
जइहं (अव्यय से पर में आनेवाले त्यदादि के आदि स्वर का लुक्	यद्यहम्
जइ अहं (लुक् का अभाव	

(४९) पद से पर में रहनेवाले अपि अव्यय के आदि अ का लुक् विकल्प से होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
तं पि; तमवि	तमपि
किं पि; किमबि	किमपि
केण वि; केणावि	केनापि
कहं पि; कहमवि	कथमपि

(५०) पद से पर में रहनेवाले इति अव्यय के आदि इकार

---

* त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु किम् ये ही त्यदादि सर्वनाम माने गये हैं।

का लुक् विकल्प से होता है और स्वर से पर में रहनेवाले तकार का द्वित्व है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
किं ति	किमिति
यं ति	यदिति
दिट्ठं ति	दृष्टमिति
न जुत्तं ति	न युक्तमिति

स्वर से पर रहने पर जैसे—

तह त्ति	तथेति
पिओ त्ति	प्रिय इति
पुरिसो त्ति	पुरुष इति

विशेष—पद से पर में नहीं रहने के कारण नीचे लिखे उदाहरण में न तो इति के आदि इ का लुक् हुआ और न तकार का द्वित्व ही। इअ* विञ्झ-गुहा-निलयाए।

(५१)—जिन श्, ष्, स् से पूर्व अथवा पर में रहनेवाले य्, र्, व्, श्, ष्, स् वर्णों का प्राकृत के नियमानुसार लोप हुआ हो उन शकार, षकार और सकारों के आदि स्वर का दीर्घ हो जाता है†। जैसे—

---

* देखिए—नियम १.६६

† इस नियम को पूर्णतः समझने के लिए हेमचन्द्र के अधोम-नयाम् २.७८ अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्। २.८६ न दीर्घानुस्वा-रात्। २.९२ आदि सूत्रों का मनन आवश्यक है।

प्राकृत		संस्कृत
पासइ	(यलोप२.७८;द्वि०२.८९; = पस्सइ.सलुक्२.७७;दीर्घ)	पश्यति
कासवो	(,, ,, ,, ,, = कस्सवो. ,, ,, ,,)	काश्ययः
वीसमइ	(र लोप २.७९; दीर्घ)	विश्राम्यति
वीसामो	(,, ,, ,,)	विश्रामः
संफासो	(,, ,, द्वित्व२.८९; संफस्सो.सलुक्२.७७;दीर्घ)	संफासो
आसो	(व लोप २.७९. ,, ,, अस्सो ,, ,, ,,)	अश्वः
वीससइ	(,, ,, ,, विस्ससइ ,, ,, ,,)	विश्वसिति
विसासो	(,, ,, ,, ,, विस्सासो ,, ,, ,,)	विश्वासः
दूसासणो	(श लोप २.७७; दीर्घ)	दुश्शासनः
मणासिला	(श लोप २.७७; दीर्घ)	मनःशिला
सीसो	(य लोप २.७८.द्वित्व२.८९.सिस्सो सलुक्२.७७दीर्घ)	शिष्यः
पूसो	(,, ,, ,, ,, पुस्सो ,, ,, ,,)	पुष्यः
मनूसो	(,, ,, ,, ,, मनुस्सो ,, ,, ,,)	मनुष्यः
कासओ	(र लोप २.७९ ,, ,, कस्सओ ,, ,, ,,)	कर्षकः
वासा	(,, ,, ,, ,, वस्सा ,, ,, ,,)	वर्षाः
वीसुं	(व लोप २.७९. उत्व१.५२.द्वि, विस्सुं ,, ,, ,,)	विष्वक्
सासं	(य लोप २.७८. ,, ,, सस्सं ,, ,, ,,)	सस्यम्
कासइ	(य लोप २.७८;द्वित्व२.८९;कस्सइ;सलुक्२.७७;दीर्घ)	कस्यचित्
ऊसो	(र लोप२.७९; ,, ,, ,, उस्सो ,, ,, ,,)	उस्रः
विकासरो	(व लोप ,, ,, ,,विकस्सरो ,, ,, ,,)	विकस्वरः
नीसो	(,, ,, ,, ,, निस्सो ,, ,,)	निस्वः
नीसहो	(स लोप २.७७ दीर्घ	निस्सहः

(५२)—समृद्ध्यादि*गण के शब्दों में आदि अकार का दीर्घ विकल्प से होता है। जैसे—सामिद्धी, समिद्धी (समृद्धिः); पाअडं, पअडं (प्रकटम्); पासिद्धी, पसिद्धी (प्रसिद्धिः); पाडिवआ, पडिवआ (प्रतिपदा); पासुत्तं, पसुत्तं (प्रसुप्तम्); पाडिसिद्धी, पडिसिद्धी (प्रतिसिद्धिः) सारिच्छो, सरिच्छो (सदृक्षः); माणंसी, मणंसी (मनस्वी); माणंसिणी, मणंसिणी (मनस्विनी); आहिआई,* अहिआई† (अभिजातिः); पारोहो, परोहो (प्ररोहः), पावासू, पवासू (प्रवासी); पाडिप्फद्धी, पडिप्फद्धी (प्रतिस्पर्द्धी), आसो अस्सो (अश्वः)।

विशेष—प्राकृतप्रकाश ने इस गण को आकृति गण माना है। ऊपर उदाहरणों में इसीलिए मनस्वी, प्ररोहः और अश्वः की उक्त गण के भीतर सिद्धि मानी गई है।

(५३) दक्षिण शब्द में आदि अकार का, ह के पर में रहने पर, दीर्घ होता है। जैसे—दाहिणो (दक्षिणः)

विशेष—ह नहीं रहने पर दक्षिणः का दक्खिणो यही रूप रह जाता है।

(५४) स्वप्न आदि शब्दों में आदि 'अ' का इकार होता है। जैसे—सिविणो (स्वप्नः); इसि (ईषत्); वेडिसो (वेतसः),

---

* समृद्ध्यादि गण के शब्दों का परिगणन यों है—

समृद्धिः, प्रतिसिद्धिश्च, प्रसिद्धिः प्रकटं तथा;
प्रसुप्तश्च प्रतिस्पर्द्धी प्रतिपच्च मनस्विनी।
अभिजातिः, सदृक्षश्च समृद्ध्यादिरयं गणः ॥—कल्पलतिका।

* आहिजाई यह पाठान्तर है।

† अहिजाई यह पाठान्तर है।

विलिअं (व्यलीकम्); विअणं (व्यजनम्); मुइंगो (मृदङ्गः); किविणो (कृपणः); उत्तिमो (उत्तमः); मिरिअं (मरियम्); दिण्णं* (दत्तम्) ।

विशेष—जहाँ दत्त के त्त के स्थान में णत्व नहीं हुआ हो, वहाँ उक्त नियम में बहुल (प्रायः) का अधिकार होने से इत्व नहीं होता है । जैसे—दत्तं; देवदत्तो ।

(५५) मयट् प्रत्यय में आदि अ के स्थान में 'अइ' आदेश विकल्प से होता है । अइ होने पर जैसे—विसमइओ; अइ के अभाव में जैसे—विसमओ (विषमयः)

(५६) अभिज्ञ† आदि शब्दों में णत्व करने पर ज्ञ के ही

---

* प्राकृत प्रकाश में—'इदीषत्पक्वस्वप्नवेतसव्यजनमृदङ्गाङ्गारेषु' यह सूत्र है । इस सूत्र में 'वेति निवृत्तम्' ऐसा कहा गया है । इसि (ईषत्); पिक्कं (पक्वं); सिविणो (स्वप्नः); वेडिसो (वेतसः); विअणो (व्यजनम्); मिइङ्गो (मृदङ्गः); इङ्गालो (अङ्गारः) । किन्तु प्राकृतमञ्जरी के अनुसार यह इत्व विकल्प से होता है । ईषत् पक्वं तथा स्वप्नो वेतसो व्यजनं पुनः । मृदङ्गश्च तथाङ्गार एषु शब्देषु सप्तसु । अत इद्वा भवेदीषदीसि वा पुनरीस वा । पक्वं पिक्कञ्च पक्कञ्च तथान्येष्वपि दृश्यताम् । इत्वमीषत्पदे कैश्चिदीकारस्यापि चेष्यते । 'इसि चुम्बिअमित्यादि रूपं तेन हि सिद्ध्यति । शौरसेनी में अङ्गार और वेतस के आदि अकार का इकार नहीं होता । आर्ष में स्वप्न शब्द के आदि अकार का उकार भी होता है । जैसे—सुमिणो । इसके लिए देखिए—हेम० १. ४६ ।

† जिनके ज्ञ का णत्व कर देने पर उत्व देखा जाता है, वे ही अभिज्ञादि हैं । देखिए हेम० १. ५६.

अकार का उत्व होता है। जैसे—अहिण्णू (अभिज्ञः); सव्वण्णू* (सर्वज्ञः); आगमण्णू (आगमज्ञः)

विशेष—णत्वाभाव में अहिज्जो (अभिज्ञः) और सव्वज्जो (सर्वज्ञः) रूप होते हैं। अभिज्ञादि से भिन्न स्थल में नियम नहीं लगता। पण्णो (प्राज्ञः)।

(५७) शय्या† आदि शब्दों में आदि अकार का एकार आदेश होता है। जैसे—सेज्जा‡ (शय्या); सुंदेरं (सुन्दरम्); उक्केरो (उत्करः); तेरहो (त्रयोदश); अच्छेरं (आश्चर्यम्); पेरन्तं (पर्यन्तम्); वेल्ली (वल्लिः)

विशेष—कोई-कोई प्राकृत वैयाकरण शय्यादि गण में कन्दुक का भी पाठ मानते हैं। उनके मत से गेंडुअं (कन्दुकम्) रूप होता है।

(५८) अर्पि धातु के आदि अ का ओ आदेश विकल्प से होता है। ओ जैसे—ओप्पेइ; ओ का अभाव जैसे—अप्पेइ

---

* पैशाची में सव्वण्णू न होकर सव्वञ्ञो और शौरसेनी में सव्वण्णो होता है।

† शय्यादि गण में निम्नलिखित शब्द ही माने गये हैं—

शय्या त्रयोदशाश्चर्यं पर्यन्तोत्करवल्लयः;
सौन्दर्यं चेति शय्यादिगणः शेषस्तु पूर्ववत् ॥

‡ प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द ने एच्छय्यादौ १.५७ और वल्ल्युत्करपर्यन्ताश्चर्ये वा १.५८ इन दो सूत्रों को बनाकर प्रथम सूत्र से नित्य एत्व करते हुए सेज्जा, सुन्देरं, गेन्दुअं, एत्थ (अत्र) इन उदाहरणों की सिद्धि मानी है। दूसरे से वैकल्पिक एत्व करते हुए वेल्ली, वल्ली; उक्केरो, उक्करो; पेरन्तो, पज्जन्तो; अच्छेरं, अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं उदाहरण दिये हैं।

(अर्पयति); एवं ओ आदेश जैसे—ओप्पिअं; ओ का अभाव जैसे—अप्पिअं (अर्पितम्)

(५९) स्वप् धातु में आदि अ के स्थान में ओत् और उत् आदेश पर्याय (बारी-बारी) से होते हैं। ओत् जैसे—सोवइ; उत् जैसे—सुवइ (स्वपिति)।

(६०) नञ् के बाद में आनेवाले पुनर् शब्द के अ के स्थान में आ और आइ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
ण उणा (आ)	न पुनः
ण उणाइ (आइ)	न पुनः
ण उण (पक्ष में)	न पुनः

(६१) अव्ययों में और उत्खात,* चामर, कालक, स्थापित प्रतिस्थापित, संस्थापित, प्राकृत, तालवृन्त हालिक, नाराच, बलाका कुमार, खादित, ब्राह्मण एवं पूर्वाह्ण शब्दों में आदि

---

* प्राकृत प्रकाश और कल्पलतिका में उक्त उदाहरणों की सिद्धि के लिए 'अदातो यथादिषु वा' सूत्र मिलता है। कल्पलतिका में यथादि गण में शब्दों की परिगणना यों की गई है—

यथातथातालवृन्त प्राकृतोत्खातचामरम्।
चाटुप्रहावप्रस्तारप्रवाहाहालिकस्तथा ॥
मार्जारश्च कुमारश्च मार्जारियुकलोपिनि।
संस्थापितं खादितञ्च मरालश्चैवमादयः ॥

प्राकृतमञ्जरीकार यथादि गण की गणना इस प्रकार करते हैं—

यथा चामरदावाग्निप्रहारोत्खातहालिकाः
तालवृन्ततथाचाटु यथादिः स्यादयं गणः।

आकार का अकार विकल्प से होता है। यथा—जह, जहा (यथा); तह, तहा (तथा); अहव, अहवा (अथवा); उक्खअं, उक्खाअं (उत्खातम्); चमरं, चामरं (चामरम्); कलओ, कालओ (कालकः); ठविअं, ठाविअं (स्थापितम्); परिठविअं, परिष्ठापि (प्रतिष्ठापितम्); संठविअं, संठाविअं (संस्थापितम्)पउअं, पाउअं (प्राकृतम्); तलवेण्टं, तालवेण्टं (तालवृन्तम्); हलिओ, हालिओ (हालिकः); णराओ, णाराओ (नाराचः); वलआ, वलाआ (वलाका) कुमरो, कुमारो (कुमारः); खइअं, खाइअं (खादितम्); बम्हणो, बाम्हणो (ब्राह्मणः); पुव्वण्हो, पुव्वाण्हो❀ (पूर्वाह्णः)

(६२) घञ् को निमित्त मानकर जहाँ आ रूप वृद्धि हुई हो, उस आदि आकार का अत्व विकल्प से होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
पवहो, पवाहो	प्रवाहः

❀ प्राकृत प्रकाश और कल्पलतिका के अनुसार प्रस्तार प्रहार, दावाग्नि, चाटु, मार्जार, मराल, प्रवाह इन शब्दों के आदि आकार का भी अत्व विकल्प से होता है। कल्पलतिका के अनुसार स्थापित, पांशुर तथा माधुर्य के आदि आकार का नित्य ही अत्व होता है। शौरसेनी आदि प्राकृत के अङ्गों में कहीं अत्व का निषेध देखा जाता है। क्रमशः यहाँ उदाहरण दिये जा रहे हैं।—पत्थरो, पत्थारो (प्रस्तारः), पहरो, पहारो (प्रहारः), दवग्गी, दावग्गी (दवाग्निः); चडु, चाडु (चाटु); मज्जारो, माजारो (मार्जारः); मरलो, मरालो (मरालः); पवहो, पवाहो (प्रवाहः)।—ठविअं (स्थापितम्); पंसुरं (पांशुरम्); मधुरीअं (माधुर्यम्); जधा (यथा); तधा (तथा)।

पअरो }
पआरो } प्रकारः

विशेष—कुछ घञन्त शब्दों में यह नियम लागू नहीं होता। जैसे—राओ (रागः) इत्यादि।

(६३) मांस जैसे शब्दों में अनुस्वार रहने पर (देखिए नियम १. ३६) आदि आकार का अत्व होता है जैसे—मंसं (मांसम्) पंसू (पांशुः); पंसनो (पांसनः); कंसं (कांसम्); कंसिओ (कांसिकः); वंसिओ (वांसिकः); संसिद्धिओ (सांसिद्धिकः); संजत्तिओ (सांयात्रिकः)

(६४) सदा आदि शब्दों में आकार का इकार आदेश विकल्प से होता है। **इकार जैसे**—सइ, तइ, जइ, **णिसिअरो**। **इकार का अभाव जैसे**—सआ, तआ, जआ, **णिसाअरो** (सदा, तदा, यदा, निशाचरः)

(६५) यदि आर्या शब्द श्वश्रु (सास) के अर्थ में प्रयुक्त हो तो 'र्य' के पूर्ववर्ती आकार के स्थान में ऊ होता है। जैसे—ऊज्जा (सास अर्थ), अज्जा (श्रेष्ठ अर्थ); (आर्या)।

(६६) मात्रट् प्रत्यय के आकार के स्थान में एकार विकल्प से होता है। **एकार आदेश जैसे**—एतिअमेत्तं। **एकाराभाव जैसे**—एतिअमत्तं (एतावन्मात्रम्)।

विशेष—कहीं कहीं मात्र शब्द में भी आकार का एकार होता देखा जाता है। जैसे—भोअणमेत्तं (भोजन मात्रम्)

(६७) संयोग से अव्यवहित पूर्ववर्ती दीर्घ का कभी-कभी ह्रस्व रूप हो जाता है। जैसे—अंबं (आम्रम्); तंबं (ताम्रम्);

विरहग्गी (विरहाग्निः); अस्सं (आस्यम्); मुनिंदो (मुनीन्द्रो) तित्थं (तीर्थम्); गुरुल्लावा (गुरूल्लापाः); चुण्णो (चूर्णः); नरिन्दो (नरेन्द्रः); मिलिच्छो (म्लेच्छः); अहरुट्ठं (अधरोष्ठम्); नीलुप्पलं (नीलोत्पलम्)

विशेष—संयोग पर में नहीं रहने से आयासं ईसरो, ऊसवो आदि शब्दों में उक्त नियम लागू नहीं होता है।

(६८) आदि इकार का संयोग के पर में रहने पर एकार विकल्प से होता है। **एकार होने पर जैसे**—पेण्डं, णेद्दा, सेंदूरं, धम्मेल्लं, वेण्हू, पेट्ठं, चेण्हं, वेल्लं। **एकाराभाव में जैसे**—पिण्डं, णिद्दा, सिंदूरं, धम्मिल्लं, विण्हू, पिट्ठं, चिण्हं, विल्लं (पिण्डम् निद्रा, सिन्दूरम्, धम्मिल्लं, विष्णु, पृष्ठम्, चिह्नम्, विल्लम्)

विशेष—इस नियम के अनुसार पिण्डादि में जो एत्व होता है, **शौरसेनी आदि** में नहीं होता। उसमें पिण्डं, णिद्दा और धम्मिल्लं ये ही रूप होते हैं।

(६९) जब इति शब्द किसी वाक्य के आदि में प्रयुक्त होता है, तब तकारवाले इकार का अकार हो जाता है जैसे—

प्राकृत	**संस्कृत**
इअ जं पिअवसाणे	इति यत् प्रियावसाने
इअ उअह अण्णह वअणं	इति पश्यतान्यथा वचनम्

विशेष—इति शब्द के वाक्यादि में प्रयुक्त नहीं रहने पर अत्व नहीं होता। जैसे—पिओ* त्ति (प्रिय इति); पुरिसो त्ति (पुरुष इति)

---

* देखो नियम १. ५०

(७०) जहाँ निर् के रेफ का लोप होता है, वहाँ नि के इकार का ईकार हो जाता है। जैसे—णीसहो (निस्सहः) णीसासो (निःश्वासः)।

विशेष—रेफ के लोप का अभाव रहने पर उक्त ईकार नहीं होता। जैसे—णिरओ (निरयः), णिस्सहो (निःसहः)।

(७१) द्वि शब्द और नि उपसर्ग के इकार का उ आदेश होता है। किन्तु कहीं-कहीं यह नियम नहीं भी लागू होता है। द्वि शब्द के विषय में कहीं विकल्प से उत्व होता और कहीं ओत्व भी देखा जाता है। **द्वि शब्द के विषय में नित्य उत्व जैसे**—दुवाइं, दुवे, दुवअणं (द्वौ, द्विवचनम्); **द्वि शब्द में विकल्प से उत्व जैसे**—दुउणो, दिउणो; दुइओ, दिउओ (द्विगुणः, द्वितीयः) **द्वि शब्द के विषय में नियम की अप्रवृत्ति**—दिओ, द्विरओ (द्विजः, द्विरदः); **द्वि शब्द के विषय में ओत्व**—दोवअणं (द्विवचनम्)। नि उपसर्ग के विषय में इकार का उत्व जैसे—णुमज्जइ, णुमण्णो (निमज्जति, निमग्नः); **नि उपसर्ग के विषय में नियम की अप्रवृत्ति जैसे**—णिवडइ (निपतति)

(७२) कृञ् धातु के प्रयोग में द्विधा शब्द के इकार का ओत्व और उत्व होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
दोहा इअं (ओकार)	द्विधा कृतम्
दुहा इअं (उकार)	

दोहा किज्जदि (ओकार) }
दुहा किज्जदि (उकार) } द्विधा क्रियते

विशेष—(क) कृञ् का प्रयोग नहीं रहने से दिहा-गयं (द्विधागतम्) में उक्त नियम नहीं लगा।

(ख) कहीं कहीं केवल (कृञ् रहित) द्विधा में भी उत्व देखा जाता है। दुहा वि सो सुर-वहू-सत्थो (द्विधापि स सुरवधूसार्थः)

(७३) पानीय* गण के शब्दों में दीर्घ ईकार के स्थान में ह्रस्व इकार होता है। जैसे—पाणिअं (पानीयम्); अलिअं (अलीकम्); जिअइ (जीवति); जिअउ (जीवतु); विलिअं (व्रीडितम्); करिसो (करीषः); सिरिसो (शिरीषः); दुइअं (द्वितीयम्); तइअं (तृतीयम्); गहिरं (गभीरम्); उवणिअं (उपनीतम्); आणिअं (आनीतम्); पलिविअं (प्रदीपितम्); ओसिअन्तो (अवसीदन्); पसिअ (प्रसीद); गहिअं (गृहीतम्); वम्मिओ (वल्मीकः); तयाणिं (तदानीम्)†

---

* कल्पलतिका के अनुसार पानीय गण में निम्नलिखित शब्द संगृहीत हैं—

पानीयव्रीडितालीकद्वितीयं च तृतीयकम्,
यथागृहीतमानीतं गभीरञ्च करीषवत्
इदानीं च तदानीं च पानीयादिगणो यथा।

प्राकृतमञ्जरी में इनसे भी कम संगृहीत हुए हैं—

पानीयव्रीडितालीकद्वितृतीयकरीषकाः
गभीरञ्च तदानीञ्च पानीयादिरयं गणः।

† प्राकृतप्रकाश पानीयादि गण में उपनीत, आनीत, जीवति,

विशेष—बहुल का अधिकार आने से अर्थात् इस नियम के प्रायिक होने से पाणीअं, अलीअं, जीअइ, करीसो, उवणीओ ये रूप भी सिद्ध होते हैं।

(७४) तीर्थ शब्द के ईकार का ऊकार तब होता है, जब कि उसके आगे का 'र्थ' ह हो गया हो। **ह होने पर ऊकार जैसे**—तूहं। **ह नहीं होने पर उत्वाभाव और ह्रस्व जैसे**—तित्थं (तीर्थम्)

(७५) मुकुलादि गण में आदि उकार के स्थान में अकार आदेश होता है।

[**प्राकृतप्रकाश** में **मुकुलादि** गण न कहकर **मुकुटादि*** गण कहा गया है। जैसे—**अन्मुकुटादिषु**]

मुकुलादि अथवा मुकुटादि के उदाहरण—मउलं (मुकुलम्); गरुई (गुर्वी); मउडं† (मुकुटम्); जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो (युधिष्ठिरः); सोअमल्लं (सौकुमार्यम्); गलोई (गुडूची)

विशेष—कहीं कहीं प्रथम उकार का आकार भी होता देखा जाता है। जैसे—विद्दाओ (विद्रुतः)

जीवतु, प्रदीपित प्रसीद, शिरीष, गृहीत, वल्मीक और अवसीदन् शब्दों का उल्लेख नहीं करता।

* मुकुटादि गण में प्राकृतमञ्जरी के अनुसार निम्नलिखित शब्द हैं।

मुकुटं मुकुलं गुर्वी सुकुमारो युधिष्ठिरः ....——
अगुरूपरि शब्दौ च मुकुटादिरयं गणः।

† तुलना कीजिए—भोजपुरी का 'मउर' शब्द और संस्कृत का 'मौलि' शब्द।

(७६) यदि गुरु शब्द के आगे स्वार्थ में क प्रत्यय किया गया हो, तो उस गुरु शब्द के आदि उकार का अ आदेश विकल्प से होता है। जैसे—गरुओ, गुरुओ (गुरुकः गुरु) स्वार्थिक क के अभाव में गुरुओ (गुरुकः। थोड़ा गुरु) होता है।

(७७) उत्साह और उच्छन्न शब्दों को छोड़कर वैसे ही अन्य शब्दों में 'त्स' और 'च्छ' के पर में रहने पर पूर्व के आदि उकार का दीर्घ ऊकार होता है जैसे—ऊसुओ (उत्सुकः); ऊसओ (उत्सवः); ऊसित्तो (उत्सिक्तः), ऊच्छुओ (उच्छुकः। उद्गताः शुका यस्मात् सः)

विशेष—उच्छाहो (उत्साहः), उच्छण्णो (उच्छन्नः) में उक्त नियमानुसार दीर्घ ऊकार नहीं होता।

(७८) दुर् उपसर्ग के रेफ का लोप हो जाने पर ह्रस्व उ का दीर्घ ऊ विकल्प से होता है। **ऊकार जैसे**—दूसहो, दूहओ; **ऊ का अभाव जैसे**—दुसहो, दुहओ (दुःसहः, दुर्भगः)

विशेष—दुस्सहो विरहो में रेफ का लोप नहीं रहने से वैकल्पिक ऊकार नहीं हुआ।

(७९) संयुक्त अक्षरों के पर में रहने पर पूर्ववर्ती प्रथम उकार का ओकर होता है। जैसे—

तोण्डं* (तुण्डम्); मोण्डं (मुण्डम्); पोक्खरं (पुष्करम्); कोट्टिमं (कुट्टिमम्); पोत्थअं (पुस्तकम्); लोद्धओ (लुब्धकः); मोत्ता (मुक्ता) वोक्कन्तं (व्युत्क्रान्तम्); कोन्तलो (कुन्तलः)

---

* प्राकृत प्रकाश में 'उत् ओत्तुण्डरूपेषु' १०. २०. यह सूत्र है। कल्पलतिका के अनुसार तुण्डादिगण के शब्द यों परिगणित हैं—तुण्डकुट्टिमकुद्दालमुक्तामुद्गरलुब्धकाः। पुस्तकश्चैवमन्येऽपि कुम्भीकुन्तलपुष्कराः।

विशेष—शौरसेनी में यह ओत्व नित्य नहीं होता।

(८०) शब्द के आदि ऋकार का अकार होता है। जैसे—घअं (घृतम्); तणं (तृणम्); कअं (कृतम्) वसहो (वृषभः) मओ (मृगः अथवा मृतः) वड्ढी आदि।

(८१) कृपादि† गण के शब्दों में आदि ऋकार का इत्व होता है। जैसे—किवा (कृपा); दिट्ठं (दृष्टम्); सिट्ठी (सृष्टिः); भिऊ (भृगुः); सिंगारो (शृङ्गारः); घुसिणं (घुसृणम्); इड्ढी (ऋद्धिः); किसाणू (कृशानुः) किई (कृतिः); किवणो (कृपणः); भिंगारो (भृङ्गारः); किसो (कृशः); विञ्चुओ (वृश्चिकः); विंहिओ (बृंहितः); तिप्पं (तृप्तम्); किच्चं (कृत्यम्); हिअं (हृतम्); विसी (वृषिः); सइ (सकृत्); हिअअं (हृदयम्); दिट्ठी (दृष्टिः); गिट्ठी (गृष्टिः); भिंगो (भृङ्गः); सियालो (शृगालः) विड्ढी (वृद्धिः); विणा (घृणा); किच्छं (कृच्छ्रम्); निवो (नृपः); विहा (स्पृहा); गिड्ढी (गृद्धिः); किसरो (कृशरः); धिई (धृतिः); किवाणं (कृपाणम्); किसिओ (कृषितः); वित्तं (वृत्तम्); वाहित्तं (व्याहृतम्); इसी (ऋषिः); वितिण्हो (वितृष्णः); मिट्ठं (मृष्टम्); सिट्ठं (सृष्टम्); पित्थी

---

† कृपादिगण के उदाहरणों की सिद्धि के लिए प्राकृतप्रकाश में इदृष्यादिषु सूत्र आया है। ऋष्यादिगण के शब्दों की गणना कल्पलतिका में इस प्रकार की गई है—ऋष्यादिषु कृतिः कृत्या धृष्टो वृषभवृश्चिकः। वृपश्च पृथुलो गृध्रो मृगाङ्को मसृणं कृषिः। सृष्टिर्दृढो भृतो गृष्टिवितृष्णकृतकृत्तयः। संज्ञावाजककृष्णोऽयमृष्यादिगण ईदृशः। प्राकृतमञ्जरीकार के मत से ऋष्यादिगण यों है—ऋषिर्दृष्टिः कृशो घृष्टिः कृपाशृङ्गारवृश्चिकाः; मृदङ्गो हृदयं भृङ्गः शृगाल इति सृष्टयः। विमृष्टश्च मृगस्तद्वद् भृत्यश्च कृशरस्तथा। आकृतिः प्रकृतिश्चैव स्यादृश्यादिरयं गणः।

(पृथ्वी); समिद्धीः (समृद्धिः); किवो (कृपः); वित्ती (वृत्तिः); उक्किट्ठं (उत्कृष्टम्)

विशेष—कल्पलतिका के अनुसार नीचे लिखे शब्दों में ऋकार का नित्य ही इत्व होता है शेष में विकल्प से—भृङ्गभृङ्गारशृङ्गाराः कृपाणं कृपणः कृपा। शृगालहृदये वृष्टिर्दृष्टिर्बृंहितमेव च। समृद्धि-कृशरातृप्तिवृत्ति वृद्धिस्तु कृत्रिमम्। कृकराकुस्तथे-त्यादौ नित्यमित्वं ऋतो मतम्। **विकल्प जैसे**—विसो, वसो (वृषः) किण्हो, कण्हो (विष्णुवाची कृष्ण)

(८२) पृष्ठ शब्द जहाँ किसी समास आदि में उत्तर पद नहीं हो, वहाँ ऋ का इ विकल्प से होता है जैसे—पिट्ठं, पट्ठं (पृष्ठम्)

विशेष—महिविट्ठं (महीपृष्ठम्) में उत्तरपद रहने से पृष्ठ शब्द का वैकल्पिक इत्व नहीं हुआ।

(८३) ऋतु प्रभृति* शब्दों में आदि ऋ का उकार होता है। जैसे—उदू (ऋतुः); पउत्ती (प्रवृत्तिः); परामुट्ठो (परामृष्टः); पाउसो (प्रावृट्); परहुओ (परभृत्); णिव्वुअं, णिव्वुदं (निर्वृतम्); उसहो (ऋषभः); भाउओ (भ्रातृकः); पहुदि (प्रभृति); संवुदं

---

* कल्पलतिका में ऋत्वादि गण यों माना गया है—

ऋतुर्मृदङ्गो निभृतं वृतः परभृतो मृतः। प्रावृट् प्रवृत्तिर्वृत्तान्तो मातृका भ्रातृकस्तथा। मृणालपृथिवीवृन्दावनजामातृका अपि। वृन्दारकश्च प्रभृतिः पृष्ठ वृद्धादयः परे॥ अत्र लक्ष्यानुसारतोऽन्येऽपि शब्दा ज्ञेयाः। (यहाँ लक्ष्यों के अनुसार ऐसे ही दूसरे शब्दों को भी जानना चाहिए।)

(संवृत्तम्); वुड्ढो (वृद्धः) मुडालं (मृणालम्); पाहुदं (प्राभृतम्); पुट्ठं (पृष्ठम्); पुहइ, पुहवी (पृथिवी), पाउअं (प्रावृतम्) भुई (भृतिः); विउअं (विवृतम्); वुंदावणं (वृन्दावनम्); जामाउओ, जामादुओ (जामातृकः); पिउओ (पितृकः); णिहुअं, णिहुदं (निभृतम्); णिव्वुई (निर्वृतिः); बुड्ढी (वृद्धिः); माउआ (मातृका); णिउअं (निवृतम्); वुत्तान्तो (वृत्तान्तः); उजू (ऋजुः); पुहुवी (पृथिवी); वुंदं (वृन्दम्); माऊ, मादु (माता)

विशेष—मृगाङ्क शब्द में मुअंको और मअंको दोनों रूप होंगे।

(८४) समास आदि में जो पद प्रधान न होकर गौण होता है, उसके अन्तिम ऋ के स्थान में उकार होता है। जैसे—

प्राकृत	संस्कृत
माउ मण्डलं मादु-मण्डलं	मातृमण्डलम्
माउ-हरं मादु-हरं	मातृगृहम्
पिउ-वणं	पितृवनम्

(८५) गौण (अप्रधान) मातृ शब्द के ऋकार का इकार विकल्प से होता है। जैसे—माइ-मण्डलं, माइ-हरं। पक्ष में—माउ (दु)-मण्डलं; माउ (दु)-हरं

विशेष—कभी-कभी प्रधान (अगौण) मातृ के ऋकार का भी इत्व हो जाता है। जैसे—माइणो (मातुः)

(८६) व्यञ्जन से सम्पर्करहित ऋ का रि आदेश कहीं विकल्प

से और कहीं नित्य होता है। जैसे—रिद्धी (ऋद्धिः); रिणं, ऋणं (ऋणम्); रिज्जू, उज्जू (ऋजुः); रिसहो, उसहो (ऋषभः); रिऊ, उदू (ऋतुः); रिसो, इसी (ऋषिः)

(८७) जिस दृश धातु के आगे कृत् के क्विप्, टक् और सक् प्रत्यय आये हों, उसके ऋ का रि आदेश होता है। जैसे—एआरिसो, तारिसो, सरिसो, सरिच्छो, एरिसो, केरिसो अण्णारिसो अम्हारिसो, तुम्हारिसो।

विशेष—शौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश में इन शब्दों के रूप कुछ और ही होते हैं।

शौर०	जादिसं	यादृशम्
	तादिसं	तादृशम्
पै०	जातिसं	यादृशम्
	तातिसं	तादृशम्
अप०	जइशं	यादृशम्
	तइशं	तादृशम्

(८८) किसी भी शब्द में आदि ऐकार का एकार होता है। जैसे—सेलो (शैलः); सेत्तं, सेच्चं (शैत्यम्); एरावणो (ऐरावतः); तेल्लुकं (त्रैलोक्यम्); केलासो (कैलासः); केढवो (कैतवः); वेहव्वं (वैधव्यम्)

(८९) दैत्यादि* गण में ऐ के स्थान में ए का अपवाद

---

* कल्पलतिका के अनुसार दैत्यादि गण के शब्द निम्नलिखित हैं—

दैत्यादौ वैश्यवैशाखवैशम्पायनकैतवाः;
स्वैरवैदेहवैदेशचैत्रवैषयिका अपि।
दैत्यादिष्वपि विज्ञेयास्तथा वैदेशिकादयः॥

अइ आदेश होता है। जैसे—*दइच्चं (दैत्यम्); दइण्णं (दैन्यम्); अइसरिअं (ऐश्वर्यम्); भइरवो (भैरवः); दइवअं (दैवतम्); वइआलीओ (वैतालिकः); वइएसो (वैदेशः); वइएहो (वैदेहः); वइअब्भो (वैदर्भः); वइस्साणरो (वैश्वानरः); कैअवं (कैतवम्); वइसाहो (वैशाखः); वइसालो (वैशालः)

(९०) वैरादि† गण में ऐत् के स्थान में अइ आदेश विकल्प से होता है। जैसे—वइरं, वेरं (वैरम्); कइलासो, केलासो (कैलासः) कइरवं, केरवं (कैरवम्); वइसवणो, वेसवणो (वैश्रवणः); वइसंपाअणो, वेसंपाअणो (वैशम्पायनः); वइआलिओ, वेआलिओ (वैतालिकः); वइसिओ, वेसिओ (वैशिकः); चइत्तो, चेत्तो (चैत्रः)

(९१) शब्द के आदि औकार का ओकार आदेश होता है। जैसे—कोमुई (कौमुदी); जोव्वणं (यौवनम्) कोत्थुहो (कौस्तुभः); सोहग्गं (सौभाग्यम्), दोहग्गं (दौर्भाग्यम्) गोदमो (गौतमः), कोसंबी (कौशाम्बी), कोंचो (क्रौञ्चः), कोसिओ (कौशिकः)

(९२) सौन्दर्यादि‡ गण के शब्दों में औत् के स्थान में उत्

---

* प्राकृतमञ्जरी के अनुसार दैत्यादि गण में निम्नलिखित शब्द परिगृहीत हैं—

दैत्यः स्वैरं चैत्यं कैटभवैदेहकौ च वैशाखः;
वैशिकभैरववैशम्पायनवैदेशिकाश्च दैत्यादिः।

† वैरादिगण में वैर, कैतव, चैत्र, कैलास, दैव और भैरव गृहीत हैं। शौरसेनी में दैव शब्द में यह नियम लागू नहीं होता।

‡ कल्पलतिका के अनुसार सौन्दर्यादिगण के शब्द यों हैं—

सौन्दर्यं शौण्डिको दौवारिकः शौण्डोपरिष्टकम्।

आदेश होता है। जैसे—सुन्देरं, सुन्दरिअं (सौन्दर्यम्) सुंडो (शौण्डः); दुवारिओ (दौवारिकः); मुञ्जाय (अ)णो (मौञ्जायनः); सुगन्धत्तणं (सौगन्ध्यम्); पुलोमी (पौलोमी); सुवण्णिओ (सौवर्णिकः)

(९३) कौन्तेयक और पौरादि† गण के शब्दों में औत् के स्थान में अउ आदेश होता है। जैसे—कउक्खेअओ, कुक्खेअओ (कौक्षेयकः); पउरो (पौरः); कउरओ(वो) (कौरवः); पउरिसं (पौरुषम्); सउहं (सौधम्); गउडो (गौडः); मउली (मौलिः); मउणं (मौनम्); सउरा (सौराः); कउला (कौलाः)।

विशेष—कौशल शब्द के विषय में दो रूप होते हैं—

कोसलो, कउसलो (कौशलम्)

(९४) अव और अप उपसर्गों के आदि स्वर का आगेवाले सस्वर व्यञ्जन के साथ 'ओत्' विकल्प से होता है। जैसे—ओआसो, अवआसो (अवकाशः);ओसरइ,; अवसरइ (अपसरति); ओहणं, अअहणं (अपघनम्)।

विशेष—उक्त नियम कहीं पर नहीं भी लागू होता है।

जैसे—अवगअं (अपगतम्); अवसदो (अपसदः)

कौन्तेयः पौरुषः पौलोमिमौञ्जदौस्याधिकादयः ॥

प्राकृतमञ्जरी के अनुसार—

सौन्दर्यशौण्डकौन्तेयास्तथा मौञ्जायनो ऽपि च।
तथा दौवारिकश्चेति सौन्दर्यादिरयं गणः ॥

† कल्पलतिका के अनुसार पौरादि निम्नलिखित हैं—

पौरपौरुषशैलानि गौडक्षौरितकौरवाः।
कोशलमौलिबौचित्यं पौराकृतिगणा मताः ॥

(६५) आगेवाले सस्वर व्यञ्जन के साथ उप के आदि स्वर के स्थान में ऊत् और ओत् आदेश विकल्प होते हैं। जैसे— ऊहसिअं, ओहसिअं (उपहसितम्); ऊआसो, ओआसो (उपवासः)।

❀ प्रथम अध्याय समाप्त ❀

द्वितीय अध्याय

(१) स्वर से पर में रहनेवाले, अनादिभूत तथा दूसरे किसी व्यञ्जन से संयोगरहित क, ग, च, ज, त, द, प, य और व अक्षरों का प्रायः लुक् होता है। **कलोप जैसे**—लोओ, सअढं,* मउलो, णउलो, णोआ (लोकः, शकटम्, मुकुलम्, नकुलः, नौका); **गलोप जैसे**—णओ,† णअरं‡, मअङ्को§, साअरो, भाइरही (नगो, नगरम्, मृगाङ्कः, सागरः, भागीरथी); **चलोप जैसे**—सई, कअग्गहो,() वअणं, सूई, रोअदि, उइदं, सूअअं (शची, कचग्रहः, वचनम्, सूची, रोचते, उचितम्, सूचकम्); **जलोप जैसे**—रअओ, पआवई,[] गओ, रअदं (रजकः, प्रजापतिः, गजः, रजतम्); **तलोप जैसे**—विआणं, किअं, रसा-अलं,)(रअणं (वितानम्, कृतम्, रसातलम्, रत्नम्); **दलोप जैसे**—

---

* सयढं पाठान्तर हेम० व्या० में है।

† हेम० व्या० में 'नओ' पाठान्तर है।

‡ हेम० व्या० में 'नयरं' पाठान्तर है।

§ हेम० व्या० में 'मयङ्को' पा०।

() हेम० व्या० 'कयग्गहो' पा०।

[] हेम० व्या० 'पयावई' पा०।

)(हेम० व्या० 'रसा-यलं' पा०।

जइ, नई, गआ*, मअणो†, वअणं, मओ (यदि, नदी, गदा, मदनः, वदनम् मदः); पलोप जैसे—रिऊ, सुउरिसो, कई, विउलं (रिपुः, सुपुरुषः, कपिः, विपुलम्); यलोप जैसे—दआलू‡, णअणं△, विओओ, वाउणा (दयालुः, नयनम्, वियोगः वायुना); वलोप जैसे—जीओ, दिअहो, लाअण्णं,)(विओहो, वडआ-णलो§ (जीवः, दिवसः, लावण्यम्, विबोधः, वडवानलः)

विशेष—(क) प्रायः कहने से कहीं-कहीं लोप नहीं होता है। जैसे—सुकुसुमं, प्रयाग-जलं, पियगमणं, सुगदो, अगुरू,() सचावं, विजणं, अतुलं, सुतरं,[] विदुरो, आदरो, अपारो, अजसो देवो, दाणवो सबहुमानं इत्यादि।

(ख) स्वर से पर में नहीं रहने के कारण संकरो, संगमो, णक्कंचरो,][धणंजओ,

---

* हेम० व्या० 'गया' पा०।

† हेम० व्या० 'मयणो' पा०।

‡ हेम० व्या 'दयालू' पा०।

△ 'नयणं पा० हेम० व्या०।

)('लायण्णं' पा० हेम० व्या०।

§ 'वलयाणलो' पा० हेम० व्या०।

() 'अगरू' पा० हेम० व्या०।

[] 'सुतारं' पा० हेम० व्या०।

][नक्कंचरो पा० हेम० व्या०। नत्तंचरो भी पाठ मिलता है।

पुरंदरो और संवरो इत्यादि में लोप नहीं होता।

(ग) अक्को, वग्गो, अग्घो, मग्गो, आदि में **संयुक्त होने के कारण** लोप नहीं होता है।

(घ) कालो, गन्धो, चोरो, जारो, तरू, दवो पावं आदि में **आद्यक्षर होने के कारण** लोप नहीं होता है।

(ङ) **समास में** उत्तर पद के आदि का लोप होता और नहीं भी होता है। जैसे—सहअरो, सहचरो, जलअरो, जलचरो, सहआरो, सहकारो आदि।

(च) कुछ लोग किन्हीं प्रयोगों में क का लोप नहीं कर के ग आदेश करते हैं जैसे—एगत्तणं (एकत्वम्); एगो (एकः); अमुगो (अमुकः); आगारो (आकारः) आगरिसो (आकर्षः)

(छ) कहीं आदि के कादि वर्णों का भी लोप, कहीं च का ज और कहीं आर्ष में च का ट आदेश* भी होते देखे जाते हैं।

---

* **शौरसेनी में** पताका, व्यापृत, और गर्भित को छोड़ कर अन्य त के स्थान में द आदेश होता है। पताका का पडाआ, व्यापृत का व्वावडो और गर्भित का गब्भिणं में रूप होते हैं। भरत के तकार का धकार होकर भरधो रूप होता है। इसी प्रकार द का प्रायः लोप नहीं

आदि के कादि के लोप जैसे—स उण (स पुनः), सो अ (स च,) इन्धं (चिह्नम्); च का ज जैसे—पिसाजी (पिशाची); आर्ष में च का ट जैसे—आउण्टणं (आकुञ्चनम्)

विशेष—जहाँ नियम २.१. के अनुसार कादि वर्णों के लोप हो चुकने पर अ अथवा आ अवशिष्ट हों, वहाँ लघुप्रयत्नतर यकार का उच्चारण जानना चाहिए।

(२) अवर्ण से पर में अनादि प का लुक् नहीं होता है। जैसे—सवहो (शपथः); सावो (शापः)

(३) स्वर से पर में होनेवाले असंयुक्त तथा अनादि ख, घ, थ, ध और भ अक्षरों के स्थान में प्रायः ह आदेश होता है।

होता। जैसे—वदणं,सौदामिणी। प्रायः कहने से हिअअ' में लोप हो जाता है। मागधी में छ के स्थान में श्च आदेश होता है। ज घ के स्थान में य होता है। य का लोप नहीं होता। पैशाची में त और द के स्थान में त होता है। हृदयं का हितयं रूप होता है। अपभ्रंश में स्वर से परे अनादि और असंयुक्त क, ख, त, थ, प और फ के स्थान में क्रमशः ग, घ, द, ध, व और भ ये ही आदेश होते हैं। पैशाची में वर्ग के तृतीय और चतुर्थ अक्षरों के स्थान में क्रमशः वर्ग के प्रथम और द्वितीय अक्षर होते हैं। जैसे नगरं का नकरं तथा भगवती का फकवती। प्रसङ्ग उपस्थित हो जाने के कारण यहाँ इतनी बातें लिखी गई।

ख का ह जैसे—महो, मुहं, मेहला, लिहइ, पमुहेण, सही, आलिहिदा (मखः, मुखम्, मेखला, लिखति, प्रमुखेण, सखी, आलिखिता); **घ का ह जैसे**—मेहो, जहणं, माहो, लाहअं, लहु (मेघः, जघनम्, माघः, लाघवम्, लघु); **थ का ह जैसे**—नाहो*, गाहा, मिहुणं, सवहो कहेहि, कहं, मणोरहो (नाथः, गाथा, मिथुनम्, शपथः, कथय, कथम्, मनोरथः); **ध का ह जैसे**—साहू, राहा, बाहो, बहिरो, बाहइ, इंदहणू, अहिअं, माहवीलदा, महुअरो (साधुः, राधा, बाधाः, बधिरः, बाधते, इन्द्रधनुः, अधिकम्, माधवीलता, मधुकरः; भ का ह† जैसे—सहा, सहावो, णहं, सोहइ, सोहणं, आहरणं, दुल्लहो (सभा, स्वभावः, नभः, शोभते, शोभनम्, आभरणम्, दुर्लभः)

विशेष—(क) **स्वर से पर में नहीं रहने से**—संखो (शङ्खः) संघो (सङ्घः) और कंथा (कन्था) में ह आदेश नहीं हुआ।

(ख **संयुक्त होने से**—लुम्पइ (लुम्पति) और अक्खइ (अक्षति) में ह आदेश नहीं हुआ।

(ग) **आदि में होने के कारण** गज्जंतो (गर्ज्जयन्) खे और गज्जइ घणो (गर्जयतिघणः) में आदेश नहीं हुआ।

---

* पृथिवी और प्रथम को छोड़कर शौरसेनी में थ का प्रायः ध होता है। जैसे—जधा (यथा), तधा (तथा) और अण्णधा (अन्यथा)। पृथिवी के लिए पढुवी और प्रथम के लिए पढुम होते हैं।

† शौरसेनी में ध ह्न द के समान और भ ह्न व के समान उच्चारण भर होता है लेख में तो ध और भ ही रहते हैं।

(घ) **प्रायः कथन के बल से** पखलो (प्रखलः), पलंबघणो (प्रलम्बघ्नः), अधीरो (अधीरः), अधण्णो (अधन्यः); जिणधम्मो (जिनधर्मः) इत्यादि में ह आदेश नहीं होता।

(४) स्वर से पर में रहनेवाले असंयुक्त और अनादि ट ठ और ड के स्थान में क्रमशः ड ढ और ल आदेश होते हैं। ट का ड जैसे—णडो*, भडो, विडवो, घडो, घडइ (नटः, भटः, विटपः, घटः, घटते); ठ का ढ जैसेः—मढो, सढो कमढो, कुढारो (मठः, शठः, कमठः, कुठारः); ड का ल जैसेः—वलवा-मुहं, गरुलो, कीलइ, तलावो, बलही (बढवामुखम्, गरुडः क्रीडति, तडागः, वलही)

विशेष—(क) स्वर से पर में ऐसा कहने से घंटा (घण्टा) वैकुंठो (वैकुण्ठः); मोंडं (मुण्डम्) एवं कोंडं (कुण्डम्) में ट, ठ और ड के स्थान में क्रमशः ड, ढ और ल नहीं हुए।

(ख) संयुक्त रहने के कारण खट्टा, चिट्ठइ (तिष्ठति) खड्गो के ट, ठ और ड के स्थान में ड, ढ और ल नहीं हुए।

(ग) अनादि नहीं होने से टंकः, ठाई (स्थायी) और डिंभो में ट, ठ ड के ड, ढ, ल नहीं हुए।

(घ) कहीं पर ट का ड नहीं होता और ण्यन्त पट धातु में ट का ल आदेश विकल्प से होता है। अटइ (अटति) में डादेश का अभाव और फालेइ, फाडेइ (पाटयति) में ट के स्थान में ल और ड पर्याय से हुए।

(ङ) ड का ल आदेश प्रायिक है, अतः आगेवाले शब्दों में विकल्प से ल होता है। वलिसं, वडिसं, दालिमं, दाडिमं; गुलो, गुडो; णाली, नाडी; णलं, णडं। प्राकृत-प्रकाशकार दाडिम, वडिस, निविड में ल आदेश नहीं मानते हैं। कल्पलतिका के मत से केवल पीडित और गुड में वैकल्पिक लत्व होता है। वस्तुतः निविडं, पीडिअं और णीडं में ल का अभाव ही उचित है।

(५) 'प्रति' उपसर्ग में तकार के स्थान में प्रायः डकार आदेश होता है। जैसे :—पडिवण्णं (प्रतिपन्नम्); पडिसरो (प्रतिसरः); पडिमा (प्रतिमा)

विशेष—'प्रायः' कहने से आगे के उदाहरणों में डकार विधान वाला नियम नहीं लागू हुआ! पइवं (प्रतीपम्); संपई (संप्रति); पइट्ठाणं (प्रतिष्ठानम्); पइट्ठा (प्रतिष्ठा); पइण्णा (प्रतिज्ञा)

(६) ऋत्वादि गण* के शब्दों में तकार का दकार होता है। जैसे :—उदू (ऋतुः); रअदं (रजतम्); आअदो (आगतः); णिव्वुदी (निर्वृतिः); आउदी (आवृतिः); संवुदी (संवृतिः); सुइदी (सुकृतिः); आइदी (आकृतिः); हदो (हतः); संजदो

---

* ऋत्वादिगण के शब्द इस प्रकार उल्लिखित हैं :—

ऋतुः किरातो रजतश्च तातः सुसङ्गतं संयतसाम्प्रतञ्च
सुसंस्कृतिप्रीतिसमानशब्दास्तथाकृतिर्निर्वृतितुल्यमेतत्।
उपसर्गसमायुक्ते कृतिवृती वृतागतौ।
ऋत्वादिगणने नेया अन्ये शिष्टानुसारतः॥

(संयतः); विउदं (विवृतम्); संजादो (संयातः); संपदि (संप्रति); पडिवद्दी (प्रतिपत्तिः)।

विशेष—उक्त नियम प्राकृतप्रकाश (२. ७.) के ऋत्वादिषु तो दः सूत्र के अनुसार बनाया गया है। किन्तु साधारण प्राकृत के लिए इस नियम को नहीं मानते। वे कहते हैं कि—'स तु शौरसेनी-मागधी-विषय एव दृश्यत इति नोच्यते।' अर्थात् यतः यह सूत्र शौरसेनी और मागधी भाषाओं में ही लागू होता है अतः हम इसका परित्याग करते हैं।

अतः साधारण प्राकृत में उक्त गण में तकार का दकार आदेश नहीं होता। रूप इस प्रकार के होंगे—उऊ (ऋतुः); रअअं (रजतम्); एअं (एतम्); गओ (गतः); संपअं (साम्प्रतम्); जओ (यतः); तओ (ततः); कअं (कृतम्); हआसो (हताशः); ताओ (तातः)

(७) दंश और दह, प्रदीपि और दीप धातुओं के दकार के स्थान में क्रमशः ड, ल और वैकल्पिक ध आदेश होते हैं। जैसे :—

प्राकृत		संस्कृत
डसइ	(द = ड)	दशति
डहइ	(द = ड)	दहति
पलीवेइ	(द = ल)	प्रदीपयति
पलित्तं	(द = ल)	प्रदीप्तम्
धिप्पइ, दिप्पइ	(वैकल्पिक ध)	दीप्यति

(८) स्वर से पर में रहनेवाले असंयुक्त और अनादि* न का ण आदेश होता है। किन्तु आदि में वर्तमान असंयुक्त न का विकल्प से ण होता है। स्वर से पर अनादि और असंयुक्त न का ण जैसेः—सअणं (शयनम्); कणअं (कनकम्); वअणं (वचनम्); माणुसो (मानुषः)। आदि में असंयुक्त न का वैकल्पिक ण जैसेः—णरो, नरो (नरः); णई, नई (नदी)

विशेष—आदि में वर्तमान संयुक्त न का वैकल्पिक णत्व नहीं होता। जैसेः—न्यायः

(९) स्वर से पर में रहनेवाले असंयुक्त और अनादि† प के स्थान में प्रायः व आदेश हो जाता है। जैसेः—सवहो (शपथः) सावो (शापः); उवसग्गो (उपसर्गः); पईवो (प्रदीपः); कासवो (काश्यपः); पावं (पापम्); उवमा (उपमा); महिवालो (महीपालः); गोवेइ (गोपयति); कलावो (कलापः); तवइ (तपति); कवोलो (कपोलः)

विशेष—(क) **स्वर से पर में रहनेवाले** कहने से कम्पइ (कम्पते) में व आदेश नहीं हुआ।

(ख) **असंयुक्त कहने से** अप्पमत्तो (अप्रमत्तः) में व आदेश नहीं हुआ।

---

* प्राकृत-प्रकाश २. ४. सर्वत्र (आदि और अनादि में) न का ण मानता है। ऊपर का नियम ८ हेमचन्द्र के अनुसार है। पैशाची में णकार का नकार हो जाता है।

† शौरसेनी में अपूर्व शब्द के स्थान में 'अवरूवं' और अउव्वं ये दो रूप होते हैं।

(ग) **आदि में रहने के कारण** पढइ (पठति) के प का व नहीं हुआ।

(घ) **प्रायः कहने से** रिऊ (रिपुः) में व नहीं हुआ।

(१०) ण्यन्त पट धातु में प के स्थान में फ आदेश होता है। जैसेः—फालेइ, फाडेइ (पाटयति)

(११) स्वर से पर में रहनेवाले असंयुक्त और अनादि फ के स्थान में कहीं भ, कहीं ह और कहीं दोनों (भ और ह) होते हैं। **भ जैसेः**—रेभो (रेफः); सिभा (शिफा), **फ का ह जैसेः**—मुत्ताहलं (मुक्ताफलम्); **दोनों जैसेः**—सेभालिआ, सेहालिआ (शेफालिका); सभरी, सहरी (शफरी)

विशेष—(क) **स्वर से पर में नहीं रहने के कारण** गुम्फइ (गुम्फति) में उक्त नियम नहीं लगा।

(ख) **संयुक्त होने के कारण** पुप्फं (पुष्पम्) में नियम लागू नहीं हुआ।

(ग) **आदि में होने के कारण** फणी के फ को उक्त आदेश नहीं हुए।

(१२) स्वर से पर में रहनेवाले, असंयुक्त और अनादि ब का व आदेश होता है। जैसेः—अलावू, अलाऊ (अलाबू); सवलो (शबलः)

(१३) विसिनी शब्द के व के स्थान में भ आदेश होता है। जैसेः—भिसिणी (विसिनी)

विशेष—उक्त नियम में विस के स्त्रीलिङ्ग रूप विसिनी का उल्लेख हुआ है। अतः विसं (विसम्) में यह नियम लागू नहीं हुआ।

(१४) पद के आदि य का ज* आदेश होता है। जैसेः—जसो (यशः); जमो (यमः); जाइ (याति)

विशेष—(क) पद के आदि में न होने के कारण अव-अवो (अवयवः) में नियम नहीं लगा।

(ख) उपसर्गयुक्त हो जाने पर अनादि य का भी ज आदेश होता है। जैसेः—संजमो (संयमः); संजोओ (संयोगः); अवजसो (अपयशः)।

(ग) कल्पलतिका के मत से सामान्यतः उत्तर पदस्थ य का भी ज आदेश होता है। जैसेः—गाढ-जोव्वणा (गाढयौवना); अजोग्गो (अयोग्यः)

(घ) कभी-कभी आदि य का लोप भी हो जाता है। जैसेः—अहाजाअं (यथाजातम्)

(१५) तीय एवं कृत् प्रत्ययों के यकार के स्थान में द्विरुक्त ज (ज्ज) आदेश विकल्प से होता है। जैसेः—

प्राकृत	संस्कृत
दीज्जी, दीओ	द्वितीयः
करणिज्जं, करणीअं	करणीयम्
रमणिज्जं, रमणीअं	रमणीयम्
पेज्जं, पेअं	पेयम्

---

* मागधी में य का ज आदेश नहीं होता है।

(१६) युष्मद् शब्द के य के स्थान में त आदेश होता है। जैसेः—तुम्हारिसो (युष्मादृशः)

(१७) छाया शब्द में यकार के स्थान में हकार आदेश होता है। जैसेः—छाहा (छाया)

(१८) हरिद्रादि* गण के शब्दों में असंयुक्त र के स्थान में ल आदेश होता है। जैसेः—हलद्दा (हरिद्रा); दलिद्दो (दरिद्रः)

(१९) संस्कृत वर्णमाला के श और ष के स्थान में प्राकृत में स आदेश होता है। जैसेः—कुसो (कुशः); सेसो (शेषः)

विशेष—वस्तुस्थिति तो यह है कि प्राकृत वर्णमाला में श और ष वर्णों के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

(२०) अनुस्वार से पर में रहनेवाले ह के स्थान में घ आदेश होता है। जैसेः—सिंघो, सीहो (सिंहः); संघारो, संहारो (संहारः)

विशेष—कहीं-कहीं अनुस्वार से पर में नहीं रहने पर भी ह का घ होता देखा जाता है। जैसेः—दाघो (दाहः)

द्वितीय अध्याय समाप्त

---

* कल्पलतिका के मत से हरिद्रादि गण यों हैः—

हरिद्रामुखराङ्गारसुकुमारयुधिष्ठिराः।
करुणाचरणाश्चैव परिखापरिघावपि॥
किरातश्चाङ्गुरी चैव दरिद्रश्चैवमादयः।

आदि शब्द से पारिभद्र, जठर, निष्ठुर और अपद्वार शब्दों का इस गण में संग्रह किया जाता है। चरण शब्द शरीराङ्गवाची गृहीत है। इसलिए 'पइस्स चरणं' में नियम नहीं लगता। मागधी और पैशाची में र के स्थान मे ल होता है।

प्राकृत व्याकरण

तृतीय अध्याय

(१) क, ग, ट, ड, त, द्, प, श, ष और स व्यञ्जन वर्ण जब किसी संयोग के प्रथम अक्षर हों तो उनका लुक् हो जाता है। और अनादि में वर्तमान शेष वर्णों का द्वित्व होता है। जैसे:—

प्राकृत			संस्कृत
भुत्तं	[कलुक्	; तद्वित्व]	भुक्तम्
सित्थं	[कलुक्	; थद्वित्व]	सिक्थम्
भत्तं	[कलुक्	; तद्वित्व]	भक्तम्
मुत्तं	[कलुक्	; तद्वित्व]	मुक्तम्
दुद्धं	[गलुक्	; धद्वित्व]	दुग्धम्
मुद्धं	[गलुक्	; धद्वित्व]	मुग्धम्
सिणिद्धो	[गलुक्	; धद्वित्व]	स्निग्धम्
सप्पओ	[टलुक्	; पद्वित्व]	षट्पदः
खग्गो	[डलुक्	; गद्वित्व]	खड्गः
सज्जो	[डलुक्	; जद्वित्व]	षड्जः
उप्पलं	[तलुक्	; पद्वित्व]	उत्पलम्
उप्पाओ	[तलुक्	; पद्वित्व]	उत्पातः
मुग्गो	[दलुक्	; गद्वित्व]	मुद्गः
मुग्गरो	[दलुक्	; गद्वित्व]	मुद्गरः
मग्गू	[दलुक्	; गद्वित्व]	मद्गुः

सुत्तं	[पलुक्	; तद्वित्व]	सुप्तम्
पज्जत्तं	[पलुक्	; तद्वित्व]	पर्याप्तम्
गुत्तो	[पलुक्	; तद्वित्व]	गुप्तः
निच्चलो	[शलुक्	; चद्वित्व]	निश्चलः
चुअइ	[शलुक्	; द्वित्वाभाव*]	श्च्योतति
गोट्ठी	[षलुक्	; ठद्वित्व]	गोष्ठी
निट्ठुरो	[षलुक्	; ठद्वित्व]	निष्ठुरः
खलिअं	[सलुक्	; ख का द्वित्वाभाव†]	स्खलितम्
णेहो	[सलुक्	; ण का द्वित्वाभाव‡]	स्नेहः

(२) म, न और य ये व्यञ्जन यदि संयुक्त के अन्तिम अक्षर हों तो उनका लुक् होता है और अनादि में वर्तमान शेष वर्णों का द्वित्व हो जाता है। जैसेः—

प्राकृत			संस्कृत
जुग्गं	[मलुक् ;	गद्वित्व]	युग्मम्
रस्सी	[मलुक् ;	सद्वित्व]	रश्मिः
सरो	[मलुक् ;	द्वित्वाभाव†]	स्मरः
नग्गो	[नलुक् ;	गद्वित्व]	नग्नः
भग्गो	[नलुक् ;	गद्वित्व]	भग्नः
लग्गं	[नलुक् ;	गद्वित्व]	लग्नम्
सोम्मो	[यलुक् ;	मद्वित्व]	सौम्यः

(३) ल, व, र ये व्यञ्जन संयुक्त के आद्यक्षर हों अथवा अन्त्याक्षर चन्द्र शब्द को छोड़कर सर्वत्र (संयुक्त के आदि

*. †. ‡. आदि में होने से चुअइ, खलिअं और णेहो में द्वित्व नहीं हुए।

† आदि में होने से सरो के स का द्वित्व नहीं हुआ।

और अन्त में) उक्त व्यञ्जनों का लुक् होता है। और अनादि में स्थित शेष वर्णों का द्वित्व होता है। जैसे—

प्राकृत			संस्कृत
उक्का	[संयुक्तादि ललुक् ;	कद्वित्व]	उल्का
वक्कलं	[संयुक्तादि ललुक् ;	कद्वित्व]	वल्कलम्
सण्हं	[संयुक्तान्त्य ललुक् ;	द्वित्वाभाव]	श्लक्ष्णम्
विक्कवो	[संयुक्तन्त्य ललुक् ;	कद्वित्व]	विक्लवः
सद्दो	[संयुक्तादि वलुक् ;	दद्वित्व]	शब्दः
अद्दो	[संयुक्तादि वलुक् ,	दद्वित्व]	अब्दः
पिक्कं	[संयुक्तान्त्य वलुक् ;	कद्वित्व]	पक्वम्
धत्थं	[संयुक्तान्त्य वलुक् ;	द्वित्वाभाव*]	ध्वस्तम्
अक्को	[संयुक्तादि रलुक् ;	कद्वित्व]	अर्कः
वग्गो	[संयुक्तादि रलुक् ;	गद्वित्व]	वर्गः
चक्कं	[संयुक्तान्त्य रलुक् ;	कद्वित्व]	चक्रः
गहो	[संयुक्तान्त्य रलुक ;	द्वित्वाभाव*]	ग्रहः
रत्ती	[संयुक्तान्त्य रलुक् ;	ताद्वत्व]	रात्रिः

विशेष—(क) चन्द्र शब्द का चन्द्रो यही रूप होता है। किन्तु हृषीकेश भट्टाचार्य अपने व्याकरण के पृष्ठ ५६ की पादटिप्पणी में लिखते हैं कि We find the form चंदो in many Manus cripts.

(ख) द्व इत्यादि में जहाँ दोनों व्यञ्जनों का लुक् प्राप्त हो, वहाँ प्राचीन प्राकृत आचार्यों के रूप दर्शन से कहीं संयुक्त के आदि वर्ण कहीं अन्त्य वर्ण और कहीं बारी-बारी से दोनों वर्णों के लुक

होते हैं। संयुक्तादिवर्ण का लुक् जैसेः—उव्विग्गो (उद्विग्नः) विउणो (द्विगुणः); कम्मसं (कल्मषम्); सव्वं (सर्वम्); संयुक्तान्त्य वर्ण का लुक् जैसेः—कव्वं (काव्यम्); कुल्ला (कुल्या) मल्लं (माल्यम्); दिओ (द्विपः); दुआई (द्विजातिः)। बारी-बारी से आद्यन्त वर्ण लुक् जैसेः—वारं, दारं (द्वारम्)

(४) द्र के रेफ का लुक विकल्प से होता है। जैसेः—दोहो, द्रोहो (द्रोहः); रुद्दो, रुद्रो (रुद्रः); भद्दं भद्रं (भद्रम्); समुद्दो, समुद्रो (समुद्रः); द्रहो, दहो* (ह्रदः)

(५) 'ज्ञा' धातु सम्बन्धी ञ का लुक् विकल्प से होता है एवं अनादि ज का द्वित्व होता है। जैसेः—सव्वज्जो, सव्वण्णू (सर्वज्ञः); अप्पज्जो, अप्पण्णू (अल्पज्ञः); अहिज्जो, अहिण्णू (अभिज्ञः); जाणं†, णाणं (ज्ञानम्); दइवज्जो, दइवण्णू (दैवज्ञः); इङ्गिअज्जो, इङ्गिअण्णू (इङ्गितज्ञः); मणोज्जं, मणोण्णं (मनोज्ञम्); पज्जा, पण्णा (प्रज्ञा); अज्जा, आणा‡ (आज्ञा); संजा§, सण्णा (संज्ञा)

---

* ह्रद शब्द की स्थितिपरिवृत्ति (इसके लिए देखिए हेम० २. १२०) के बाद द्रह रूप होता है। यहाँ इसी द्रह में उक्त नियम (३. ४.) लग जाने से दहो और द्रहो रूप हुए। कुछ लोग र का लोप करना नहीं चाहते और कुछ लोग द्रह को संस्कृत मानते हैं।

† आदि में होने से द्वित्व नहीं हुआ।

‡ किसी-किसी पुस्तक में 'अण्णा' पाठ मिलता है।

§ स्वर से पर में नहीं होने से द्वित्व नहीं हुआ।

विशेष—कहीं-कहीं यह नियम नहीं लागू होता है। जैसेः-
विरणाणं (विज्ञानम्)*

(६) अनादि एकाकी व्यञ्जन, जो कि पूर्वोक्त नियमों से संयुक्त व्यञ्जन के लुक् होने पर अवशिष्ट रहता है द्वित्व† को प्राप्त करता है। जैसेः—

प्राकृत		संस्कृत
दिट्ठी	[षलुक् ; ठद्वित्व]	दृष्टिः
हत्थो	[स लुक् ; थ द्वित्व]	हस्तः

(७) वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ वर्णों के द्वित्व का प्रसङ्ग हो तो द्वितीय वर्ण के ऊपर उसी वर्ग के प्रथम और चतुर्थ के ऊपर उसी वर्ग के तृतीय अक्षर होते हैं। जैसेः—वक्खाणं (व्याख्यानम्); अग्घो (अर्घः)

(८) दीर्घ स्वर एवं अनुस्वार से पर में रहनेवाले संयुक्तशेष व्यञ्जन (ऊपर से नियमों से संयुक्ताक्षरों में व्यञ्जन के लुक् हो जाने पर अवशिष्ट व्यञ्जन) का द्वित्व नहीं होता है‡। जैसेः—

---

* शौरसेनी में ज्ञ के स्थान में ञ होता है। मागधी और पैशाची में ज्ञ के स्थान में ञ्ञ होता है। पैशाची में राजन् शब्द सम्बन्धी ज्ञ चिञ् विकल्प से होता है। शौरसेनी, मागधी और पैशाची में न्य और ण्य के स्थान में भी ञ्ञ होता है।

† हेमचन्द्र ने 'अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम्' २. ८६. सूत्र बनाकर आदेश का भी द्वित्व माना है। जैसेः—उक्को, जक्खो, रग्गो, किच्ची, रुप्पी। कहीं पर यह नियम नहीं लगता है। जैसे—कसिणो। अनादि कहने से खलिअं, थेरो, खम्भो में नियम नहीं लगा।

‡ यहाँ दीर्घ और अनुस्वार नियमवश सम्पन्न (लाक्षणिक) और स्वाभाविक (अलाक्षणिक) दोनों गृहीत हैं। लाक्षणिक दीर्घः—छूढो,

ईसरो (ईश्वरः); लासं (लास्यम्); संकंतो (संक्रान्तः); संझा (संध्या)

(९) रेफ† और हकार का द्वित्व नहीं होता है। जैसेः—सुंदेरं (सौन्दर्यम्); बम्हचेरं (ब्रह्मचर्यम्); धीरं (धैर्यम्); विहलो (विह्वलः); कहावणो (कार्षापणः)

(१०) वर्णों के द्वित्व करानेवाले पूर्वोक्त नियम समस्त (समासवाले) पदों में विकल्प से प्रवृत्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि समास में शेष और आदेश व्यञ्जन का द्वित्व विकल्प से होता है। जैसेः—नइ-ग्गामो, नइ-गामो (नदी ग्रामः); कुसुम-प्पयरो, कुसुम-पयरो (कुसुम प्रकरः); देव-त्थुई; देव-थुई (देव-स्तुतिः) इत्यादि।

विशेष—कभी-कभी पूर्वोक्त द्वित्वविधायक नियमों की विषयता नहीं होने पर भी समास में वैकल्पिक द्वित्व होता देखा जाता है। जैसेः—पम्मुक्कं, पमुक्कं (प्रमुक्तम्); तेल्लोक्कं, तेलोक्कं (त्रैलोक्यम्) इत्यादि।

(११) तैलादि* गण के शब्दों में प्राचीन प्राकृत आचार्यों

नीसासो, फासो। अलाक्षणिक दीर्घः—पासं, सीसं। लाक्षणिक अनुस्वारः—तंसं अलाक्षणिक अनुस्वारः—संझा, विंझो। यह नियम आदेश में भी लगता है।

† रेफ शेष नहीं मिलता है। आदेश ही मिलता है। देखो नियम ३. ३.

* प्राकृत-प्रकाश में तैलादि गण के बदले नीडादि गण से काम लिया गया है। कल्पलतिका में नीडादि गण यों हैः—

नीड व्याहृतमण्डूकस्रोतांसि प्रेमयौवने।
ऋजुः स्थूलं तथा तैलं त्रैलोक्यं च गणो यथा॥

के निर्णयानुसार कहीं अन्त्य और कहीं अनन्त्य व्यञ्जनों का द्वित्व होता है। जैसे:—तेल्लं (तैलम्); मंडुक्को (मण्डूकः); उज्जू (ऋजुः); सोत्तं (स्रोतः); पेम्मं (प्रेम) विड्डा (व्रीडा); जोव्वणं (यौवनम्)

(१२) सेवादि* गण के शब्दों में प्राचीन प्राकृत आचार्यों के निर्णयानुसार कहीं अन्त्य और कहीं अनन्त्य (किन्तु अनादि) व्यञ्जनों का विकल्प से द्वित्व होता है। जैसे:—सेव्वा, सेवा (सेवा); विहित्तो, विहिओ (विहितः); कोउहल्लं, कोउहलं (कौतूहलम्); वाउल्लो, वाउलो (व्याकुलः); नेड्डं, नीडं, नेडं (नीडम्); नक्खा, नहा (नखाः); निहित्तो, निहिओ (निहितः); वाहित्तो, वाहिओ (व्याहृतः); माउक्कं माउअं (मृदुकम्); एक्को, एओ (एकः); थुल्लो, थोरो (स्थूलः) हुत्तं, हूअं (हुतम्); दइव्वं, दइवं (दैवम्); तुण्हिक्को, तुण्हिओ (तूष्णीकः); मुक्को, मूओ (मूकः); खण्णू, खाणू (स्थाणुः); थिण्णं, थीणं (स्त्यानम्); अम्हक्केरं, अम्हकेरं (अस्मदीयम्) इत्यादि।

(१३) क्ष के स्थान में ख आदेश होता है। किन्तु कुछ स्थलों में छ और झ आदेश भी होते हैं। ख आदेश जैसे:—

---

* कल्पलतिका में सेवादि गण यों है:—

सेवा कौतूहलं दैवं विहितं मखजानुनी।
पिवादयः सवा (?) शब्दा एतदाद्या यथार्थकाः॥
त्रैलोक्यं कर्णिकारश्च वेश्या भूर्जश्च दुःखितम्।
रात्रिविश्वासनिश्वासा मनोऽस्लेश्वर रश्मयः॥
दीर्घैकशिवतूष्णीकमित्रपुष्पासि दुर्लभाः।
दुष्करो निष्कृपः कर्मकरेष्वासपरस्परम्॥
नायकाद्यास्तथा शब्दाः सेवादिगणसम्मताः।

खओ (क्षयः); लखणं (लक्षणम्); छ और ख आदेश जैसेः—छीणं, खीणं (क्षीणम्); झ और ख आदेश जैसेः—झिज्जइ, खिद्यति (क्षिद्यति)

(१४) अक्ष्यादि* गण के शब्दों में क्ष के स्थान में ख न होकर छ आदेश होता है। जैसेः—अच्छी (अक्षि); उच्छू (इक्षुः)

विशेष—स्थगित शब्द के स्थ के स्थान में भी उक्त नियम से छ आदेश हो जाता है। जैसेः—छइअं (स्थगितम्)

(१५) उत्सव अर्थ के वाचक क्षण शब्द में क्ष के स्थान में छ आदेश होता है। **उत्सव अर्थ में जैसे**ः—छणो; **समय अर्थ में जैसे**ः—खणो (क्षणः)

(१६) संयुक्त क्म और ड्म के स्थान में प आदेश होता है। **क्म में जैसे**ः—रुप्पं, रुप्पिणी (रुक्मम्, रुक्मिणी)। **ड्म में जैसे**ः—कुप्पलं (कुड्मलम्)

विशेष—कहीं-कहीं क्म के लिए च्म आदेश भी देखा जाता है। जैसेः—रुच्मी (रुक्मी)

(१७) ष्क और स्क के स्थान में ख आदेश होता है, यदि उन संयुक्ताक्षरों से घटित शब्द द्वारा किसी नाम (संज्ञा) की प्रतीति होती हो। **ष्क का ख जैसे**ः—पोक्खरं (पुष्करम्); पोक्ख-

---

* कल्पलतिका के अनुसार अक्ष्यादि गण यों हैंः—
अत्राक्षिचक्षुरक्षुण्णक्षार उत्क्षिप्तमक्षिकैः।
दक्षो वक्षः सदृक्षोऽक्ष क्षेत्रक्षीरेक्षुकुक्षयः॥
क्षुधा चेत्यादयः शब्दा अक्ष्यादिगणसम्मताः।

रिणी (पुष्करिणी); निक्खं (निष्कम्) **स्क का ख जैसे**:—**खंधो** (स्कन्धः) खंधावारो (स्कन्धावारः)

विशेष—संज्ञा नहीं होने से दुक्करं (दुष्करम्) निक्काम्मं (निष्काम्यम्) और सक्कअं (संस्कृतम्) में उक्त नियम लागू नहीं हुआ।

(१८) उष्ट्र, इष्ट और संदष्ट शब्द के ष्ट को छोड़कर अन्य ष्ट के स्थान में ठ आदेश होता है। जैसेः—लट्ठी (यष्टिः) मुट्ठी (मुष्टिः); दिट्ठी (दृष्टिः); सिट्ठी (सृष्टिः); पुट्ठो (पुष्टः); कट्ठं (कष्टम्)

विशेष—उष्ट्र आदि में ठ आदेश नहीं होने से उट्टो, इट्टा-चुण्णा व्व और संदट्टो रूप होते हैं।

(१९) चैत्य शब्द के त्य को छोड़कर अन्य त्य के स्थान में च आदेश होता है। जैसेः—सच्चं (सत्यम्); पच्चओ (प्रत्ययः); निच्चं (नित्यम्); पच्चच्छं (प्रत्यक्षम्)

विशेष—चैत्य शब्द का चइत्तं रूप होता है।

(२०) कुछ स्थलों में त्व, थ्व, द्व और ध्व के स्थान में क्रमशः च्च, च्छ, ज्ज और ज्झ आदेश होते हैं। **त्व का जैसे**—भोच्चा, णच्चा, सोच्चा (भुक्त्वा, ज्ञात्वा श्रुत्वा); **थ्व का जैसे**—पिच्छी (पृथ्वी); **द्व का जैसेः**—विज्जं (विद्वान्); ध्व का **जैसेः**—बुज्झा (बुद्ध्वा)

(२१) धूर्तादि गण के शब्दों को छोड़कर अन्य र्त का ट आदेश विकल्प से होता है। जैसेः—केवट्टो (कैवर्त्तः); वट्टी (वर्तिः); णट्टओ (नर्तकः); णट्टई (नर्तकी) संवट्टिअं (संवर्तिकम्)

विशेष—धूर्तादि गण[1] में उक्त नियम लागू नहीं होता है। धुत्तो, कित्ती, वत्ता, आवत्तणं, निवत्तणं, पवत्तणं, संवत्तणं, आवत्तओ, निवत्तओ, पवत्तओ, संवत्तओ, वत्तिआ, वत्तिओ, कत्तिओ, उक्कत्तिओ, कत्तरी, मुत्ती, मुत्तो, मुहुत्तो।

(२२) ह्रस्व से पर में वर्तमान थ्य, श्च, त्स और प्स के स्थान में छ आदेश होता है। किन्तु निश्चल शब्द के श्च का छ आदेश नहीं होता। **थ्य का छ जैसे:**—पच्छं (पथ्यम्); पच्छा (पथ्या); मिच्छा (मिथ्या); रच्छा (रथ्या) **श्च का छ जैसे:**—पच्छिमं (पश्चिमम्); अच्छेरं (आश्चर्यम्); पच्छा (पश्चात्) **त्स का छ जैसे:**—उच्छाहो (उत्साहः); मच्छरो (मत्सरः); वच्छो (वत्सः) **प्स का छ जैसे**—लिच्छइ (लिप्सति); जुगुच्छइ (जुगुप्सते); अच्छरा (अप्सराः)

विशेष—(क) ह्रस्व से पर में नहीं रहने से ऊसारिओ (उत्सारितः) में उक्त नियम नहीं लगा।

(ख) निश्चल शब्द का णिच्चलो रूप होता है।

(ग) तथ्य का आर्ष प्राकृत रूप तत्थं और तच्चं होता है।

(२३) संयुक्त द्य, य्य और र्य के स्थान में ज आदेश होता है। **द्य का ज जैसे:**—मज्जं, अवज्जं, वेज्जं, विज्जा (मद्यम्, अवद्यम्, वेद्यम्, विद्या) **य्य का ज**

---

१. धूर्तादि गण में धूर्त, कीर्ति, वार्ता, आवर्तन, निवर्तन, प्रवर्तन, संवर्तन, आवर्तक, निवर्तक, प्रवर्तक, संवर्तक, वर्तिका, वार्तिक, कार्तिक, उत्कर्तित, कर्तरी, मूर्ति, मूर्त और मुहूर्त शब्द परिगणित हैं।

जैसे :—जज्जो, सेज्जा (जय्यः, शय्या) **र्य्य का ज जैसे :**—भज्जा, कज्जं, वज्जं, पज्जाओ, पज्जन्तं (भार्य्या, कार्य्यम् , वर्यम् , पर्य्यायः, पर्यन्तम्)

विशेष—(क) **शौरसेनी में** र्य्य के स्थान में य्य भी होता है।

(ख) **पैशाची में** र्य्य के स्थान में कहीं रिय आदेश होता है।

(२४) ध्य के स्थान में झ एवं म्न और ज्ञ के स्थान में ण आदेश होते हैं। **ध्य का झ जैसे :**—झाणं, उवज्झाओ, सज्झाओ, मज्झं, विंज्झो, अज्झाओ (ध्यानम् , उपाध्यायः, साध्यायः या स्वाध्यायः, मध्यम् , विन्ध्यः, अध्यायः) **म्न का ण जैसे :**—निण्णं, पज्जुण्णो, (निम्नम् , प्रद्युम्नः) **ज्ञ का ण जैसे :**—णाणं, संणा, पण्णा, विण्णाणं (ज्ञानम् , संज्ञा, प्रज्ञा, विज्ञानम्)

(२५) समस्त और स्तम्ब के स्त को छोड़कर अन्य स्त के स्थान में थ आदेश होता है। जैसे:—हत्थो, थोत्तं, थोअं, पत्थरो, थुई (हस्तः, स्तोत्रम् , स्तोकम् , प्रस्तरः, स्तुतिः)

विशेष—(क) मागधी में स्त और र्थ के स्थान में स्त ही होता है।

(ख) समस्त शब्द का रूप समत्तं और स्तम्ब शब्द का तंबो होता है।

(२६) संयुक्त न्म के स्थान में म आदेश होता है। जैसे:—जम्मो, मम्महो (जन्म, मन्मथः)

(२७) ष्प और स्प के स्थान में फ आदेश होता है। **ष्प का फ जैसे :**—पुप्फं, सप्फं, निप्फेसो (पुष्पम् , शष्पम् , निष्पेषः) **स्प का फ जैसे :**—फंदणं, पडिप्फद्दी, फंसो (स्पन्दनम् , प्रतिस्पर्द्धी, स्पर्शः)

(२८) संयुक्त श्न, ष्ण, स्न, ह्न, ह्ल और सूक्ष्म शब्द के क्ष्म के स्थान में ण्ह आदेश होता है। **श्न का ण्ह जैसे :**—पण्हो (प्रश्नः); **ष्ण का ण्ह जैसे :**—विण्हू, कण्हो, उण्हीसं (विष्णुः, कृष्णः, उष्णीषम्) **स्न का ण्ह जैसे :**—जोण्हा, ण्हाऊ, ण्हाणं, वण्ही, जण्हू (ज्योत्स्ना, स्नायुः, स्नानम् , वह्निः, जह्नुः) **ह्ल का ण्ह जैसे :**—पुव्वण्हो, अवरण्हो (पूर्वाह्णः, अपराह्णः) **क्ष्ण का ण्ह जैसे :**—सण्हं, तिण्हं (श्लक्ष्णम् , तीक्ष्णम्) **सूक्ष्म के क्ष्म का ण्ह जैसे :**—सण्हं (सूक्ष्मम्)

(२९) संयुक्त श्म, ष्म, स्म और ह्म के स्थान में म्ह आदेश होता है। **श्म का म्ह जैसे :**—कम्हारो (काश्मीरः) **ष्म का म्ह जैसे :**—गिम्हो, उम्हं (ग्रीष्मः, उष्मा); **स्म का म्ह जैसे :**—अम्हारिसो, विम्हओ (अस्मादृशः, विस्मयः) **ह्म का म्ह जैसे :**—बम्हा, सम्हो, बम्हणो, बम्हचरं (ब्रह्मा, सुह्मः, ब्राह्मणः, ब्रह्मचर्यम्)

विशेष—(क) ब्रह्मचर्यम् के लिए कभी-कभी बम्भचेरं रूप भी देखा जाता है।

(ख) रश्मिः और स्मरः में उक्त नियम लागू नहीं होता है। जैसे :—रस्सी, सरो।

(३०) संयुक्त ह्य के स्थान में झ आदेश होता है। जैसे :—सज्झो, मज्झं, गुज्झं (सह्यः, मह्यम् , गुह्यम्)

(३१) संयुक्त ह्ल के स्थान में ल्ह आदेश होता है। जैसे:—कल्हारं, पल्हाओ (कह्लारम् , प्रह्लादः)

(३२) जिस संयुक्त अक्षर का अन्त लकार से होता हो उसका विप्रकर्ष[1] होता है। और पूर्व के अक्षर को इत्व भी होता है। जैसे:—किलिण्णं, किलिट्ठं, सिलिट्ठं, पिलुट्ठं, सिलोओ, किलेसो, मिलाणं, किलिस्सइ (क्लिन्नम् , क्लिष्टम् , श्लिष्टम् , प्लुष्टम् , श्लोकः, क्लेशः, म्लानम् , क्लिश्यति)

विशेष—कमो (क्लमः); पवो (प्लवः) और सुक्कपक्खो (शुक्लपक्षः) में उक्त नियम लागू नहीं होता।

(३३) उकारान्त किन्तु ङीप्रत्ययान्त तन्वी (तनु+ई) सदृश शब्दों में वर्तमान संयुक्ताक्षरों का विप्रकर्ष होता है और पूर्व के अक्षर का उकार स्वर से योग होता है। जैसे :—तिणुवी, तणुई (तन्वी); लहुवी, लहुई (लघ्वी); गुरुवी, गुरुई (गुर्वी); पुहुवी (पृथ्वी)

विशेष—उक्त नियम की विषयता नहीं रहने पर भी सुरुग्घो (स्रुघ्नः) में नियम प्रवृत्त हो जाता है। प्राकृत के प्राचीन ऋषियों के अनुसार सूक्ष्म शब्द का सुहुमं रूप हो जाता है।

---

1. विप्रकर्ष से तात्पर्य पृथक् होने से है।

(३४) जब श्वस् और स्व शब्द किसी समास के अङ्ग न होकर पृथक् ही एक पद हों तब इनका विप्रकर्ष हो जाता एवं पूर्व के व्यञ्जन में उ स्वर का योग भी हो जाता है। जैसे :—

प्राकृत	संस्कृत
सुवे कअं	श्वः कृतम्
सुवे जना	स्वे जनाः

विशेष—हेमचन्द्र ने २.११४. में **एकस्वरवाले पद में** श्वस् और स्व शब्दों का उक्त कार्य माना है। उसका भी तात्पर्य पृथक् ही एक पद होने में है। समास का अङ्ग हो जाने पर सयणो (स्वजनः) हो जाता है।

(३५) शील (स्वभाव, आदत), धर्म (गुण) अथवा साधु (प्रवीण) अर्थ में जो प्रत्यय आते हैं उनके स्थान में 'इर' आदेश होता है। जैसे :—हसिरो, रोचिरो, लज्जिरो, भमिरो, जम्पिरो, वेविरो, ऊससिरो (हसनशीलः इत्यादि)

विशेष—कोई-कोई तृन् के स्थान में ही 'इर' का आदेश मानते हैं। उनके मत से संस्कृत के नमी और गमी के लिए नमिर और गमिर रूप नहीं सिद्ध होते।

(३६) क्त्वा प्रत्यय के स्थान में तुम्, अत्, तूण और तुआण ये ४ आदेश होते हैं। जैसे :—

प्राकृत		संस्कृत
दट्ठुं	[क्त्वा = तुम्]	दग्ध्वा
मोत्तुं	[,, ,,]	मुक्त्वा
भमिअ	[क्त्वा = अत्]	भ्रमित्वा
रमिअ	[,, ,,]	रन्त्वा
घेत्तूण	[क्त्वा = तूण]	गृहीत्वा
काऊण	[,, ,,]	कृत्वा
भोत्तुआण[1]	[क्त्वा=तुआण]	भुक्त्वा
सीउआण[2]	[,, ,,]	सवित्वा

विशेष—(क) कहीं-कहीं तुम्वाले म् के अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे:—वन्दित्तु। व का लोप करके वन्दित्वा संस्कृत का वन्दित्ता प्राकृत रूप बनता है।

(ख) **शौरसेनी में** क्त्वा के स्थान में इय और दूण आदेश होते हैं। कृ और गम धातुओं से अदूय होता है। मागधी-आवन्ती में क्त्वा के स्थान में तूण आदेश होता है। अपभ्रंश में क्त्वा के स्थान में इइ, उइ, विअवि आदेश होते हैं।

(३७) इदमर्थ[3] में प्रयुक्त प्रत्ययों के स्थान में 'केर' आदेश होता है। जैसे:—तुम्हकेरो, अम्हकेरो (युष्मदीयः, अस्मदीयः)

---

१. २. हेमचन्द्र २.१४६ में भेत्तुआण और सेउआण रूप मिलते हैं।

३. किसी से सम्बन्ध रखनेवाला पुरोवर्ती पदार्थ। जैसे—तुम्हारा यह ग्रन्थ, इस अर्थ में संस्कृत में 'युष्मदीयो ग्रन्थः' ऐसा प्रयोग इदमर्थ में है।

विशेष—मईअ-पक्खे, पाणिणीआ (मदीयपक्षे; पाणिनीयाः) में उक्त नियम नहीं लगता है। पर और राजन् शब्दों से पारक्कं और राइक्कं भी बनते हैं।

(३८) इदमर्थ में युष्मद्-अस्मद् शब्दों से पर में रहनेवाले अञ् प्रत्यय के स्थान में 'एच्चय' आदेश होता है। जैसे:—तुम्हेच्चयं, अम्हेच्चयं (यौष्माकम्, आस्माकम्)

विशेष—अपभ्रंश में इदमर्थ प्रत्ययों के स्थान में केवल 'आर' आदेश होता है। यथा:—अम्हारो (अस्मदीयः)।

(३९) त्व प्रत्यय के स्थान में 'डिमा' और 'त्तण' आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे:—पीणिमा, पीणत्तणं (पीनत्वम्)

विशेष—तल् (ता) प्रत्ययान्त पीनता आदि के स्थान में पीणआ (या) इत्यादि रूप होतेहैं। पीणदा रूप विशेष प्राकृत में भले ही होता हो, किन्तु सामान्य प्राकृत में नहीं होता। हाँ प्राकृतप्रकाशकार कुल प्राकृतों में तल् प्रत्यय के स्थान में 'दा' आदेश करते हैं।[1]

(४०) अंकोठवर्जित शब्द से पर में आनेवाले 'तैल' प्रत्यय के स्थान में 'डेल्ल' आदेश होता है। जैसे:—इङ्गुदीएल्लं (इङ्गुदीतैलम्)

विशेष—अंकोठ शब्द से अंकोल्लतेल्लं रूप होता है।

---

१. प्रा० प्र० ४. २२.

(४१) यद्, तद् और एतद् शब्दों से पर में आनेवाले परिमाणार्थक प्रत्यय के स्थान में 'इत्तिअ' आदेश होता है और एतद् शब्द का लुक् भी होता है । जैसे :—जित्तिअं, तित्तिअं, इत्तिअं (यावत्, तावत्, एतावत्)

(४२) इदम्, किम्, यद्, तद् और एतद् शब्दों से पर में आनेवाले परिमाणार्थक प्रत्यय के स्थान में 'डेत्तिअ'[१] 'डेत्तिल' और 'डेद्दह' आदेश होते हैं । इन प्रत्ययों के आने पर एतद् शब्द का लुक् हो जाता है । इदम् शब्द से जैसे :—एत्तिअं, एत्तिलं, एद्दहं (इयत्); केत्तिअं, केत्तिलं, केद्दहं (कियत्); जेत्तिअं, जेत्तिलं, जेद्दहं (यावत्); तेत्तिअं, तेत्तिलं, तेद्दहं, (तावत्), एत्तिअं, एत्तिलं, एद्दहं (एतावत्)

(४३) कृत्वस् प्रत्यय (क्रिया की अभ्यावृत्ति की गणना[२] अर्थ में होनेवाले) के स्थान में 'हुत्तं' आदेश होता है । जैसे :—बहुहुत्तं (बहुकृत्वः)

(४४) मतुप् प्रत्यय के स्थान में आलु, इल्ल, उल्ल, आल, वन्त और इन्त आदेश होते हैं । **आलु जैसे** :—ईसालू, णिद्दालू (ईर्ष्यावान्, निद्रावान्) **इल्ल जैसे** :—विआरिल्लो, सोहिल्लो (विकारवान्, शोभावान्) **उल्ल जैसे** :—विआरुल्लो, मंसुल्लो (विकारवान्, मांसवान्) **आल जैसे** :—रसालो, जगलो, जोण्हालो (रसवान्, जडवान्, ज्योत्सा-

---

१. प्रत्ययों के आदि ड् के इत् अर्थात् लुप्त होने से यद् और तद् के टि अर्थात् अद्भाग का भी लोप हो जाता है ।

२. दे० 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।' पा० सू० ५।४।१७

वान्) **वन्त जैसे**:—धणवन्तो, भत्तिवन्तो (धनवान्, भक्तिमान्)

विशेष—(क) हेमचन्द्र के मत से मन्त और इर आदेश भी होते हैं। जैसे:—सिरिमंतो, पुण्णमंतो, धणिरो (श्रीमान्, पुण्यवान्, धनवान्)

(ख) कुछ लोगों का कहना है कि इल्ल और उल्ल सार्वत्रिक न होकर पाणिनीय व्याकरण के शैषिक प्रकरण में ही आते हैं। जैसे:—पुरिल्लं (पौरस्त्यम्), अप्पुल्लं (आत्मीयम्)

(४५) वति प्रत्यय के स्थान में 'व्व' यह आदेश होता है। जैसे:—महुव्व (मधुवत्)

स्वार्थिक प्रत्यय।

प्राकृत	प्रत्यय	संस्कृत	प्राकृत	प्रत्यय	संस्कृत
नवल्लो	ल्ल	नवः	मिसालिअ	डालिअ	मिश्र
एकल्लो, एक्कल्लो	,,	एकः	दीहरं	र	दीर्घः
अवरिल्लो	,,	उपरि	विज्जला	ल	विद्युत्
भुमया	मया	भ्रूः	पत्तलं	,,	पत्रम्
भमया	डमया	भ्रूः	पीवलं	,,	पीतम्
सणिअं	डिअं	शनैः	पीअलं		पीतम्
मणिअं	,,	मनाक्	अंधलो	,,	अन्धः
मणअं	डअं	मनाक्	जमलं	,,	यमः

विशेष—स्वार्थ में सभी शब्दों से क प्रत्यय होता है।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

[शब्दसाधन प्रकरण]

(१) प्राकृत में संस्कृत के समान ही पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग होते हैं।

विशेष—संस्कृत के जिन शब्दों का प्राकृत में लिङ्ग बदल जाता है, उनके विषय में इस ग्रन्थ के १–३८–४५ तक में विचार किया गया है।

(२) प्राकृत में संस्कृत के समान तीनों वचन न होकर एकवचन और बहुवचन ही होते हैं।

(३) कर्ता आदि छवों कारकों की चतुर्थीरहित विभक्तियाँ प्राकृत शब्दों के आगे प्रयुक्त होती हैं। चतुर्थी के स्थान की पूर्ति षष्ठी विभक्ति से होती है। विभक्तियों के नाम पाणिनि के नामकरण के अनुसार ही हैं।

(४) प्राकृत में अवर्णान्त (अ और आ से अन्त होनेवाले), इवर्णान्त (इ और ई से अन्त होनेवाले), उवर्णान्त (उ और ऊ से अन्त होनेवाले), ऋवर्णान्त (ऋ से अन्त होनेवाले) तथा हलन्त (जिनके अन्त में व्यञ्जन अक्षर आये हों) ये पाँच प्रकार के शब्द पाये जाते हैं।

विशेष—वस्तुतः प्रयोग में ऋकारान्त तथा हलन्त शब्दों की उपलब्धि नहीं होने से तीन ही प्रकार के शब्द रह जाते हैं।

(५) पुँल्लिङ्ग में वर्तमान ह्रस्व अकारान्त शब्द के आगे आनेवाली प्रथमा के एकवचन की 'सु' विभक्ति के स्थान में 'ओ' आदेश होता है। जैसे :—देवो, हरिअंदो, ह्रदो (देवः, हरिश्चन्द्रः, ह्रदः)

विशेष—(क) **मागधी** में सु के पर में रहने पर अन्त के अ का ए हो जाता है और सु का लोप हो जाता है। जैसे :—रुक्खे, एशे, मेशे (वृक्षः, एषः, मेषः)

(ख) **अपभ्रंश** में सु और अम् के पर में रहने पर अन्त के अ के स्थान में उ आदेश माना जाता है।

(६) जस्, शस्, ङसि और आम् इन विभक्तियों के पर में रहने पर पुँल्लिङ्ग शब्द के अन्त्य अ के स्थान में आ आदेश होता है तथा जस् और शस् विभक्तियों का लोप होता है। जैसे :—देवा, णउला (देवाः, देवान्, नकुलः, नकुलान्)

(७) अदन्त (अ से अन्त होनेवाले) शब्द से पर में आनेवाले अम् के अकार का लुक् हो जाता है। जैसे :—देवं, णउलं (देवं, नकुलम्)

(८) ह्रस्व अकारान्त शब्द से पर में आनेवाले टा (तृतीया के एकवचन) और आम् (षष्ठी के बहुवचन) के स्थान में ण आदेश होता है। जैसे :—देवेण, देवाण, अथवा देवाणं (देवेन, देवानाम्)

विशेष—अपभ्रंश में टा के स्थान में ण्ण और अनुस्वार होते हैं। तथा टा के पर में रहने पर अ का नित्य

एत्व होता है एवं भिस् के पर में रहने पर विकल्प से। से अ पर में आम् का हं आदेश होता है।

(९) अदन्त (अ से अन्त होनेवाले) शब्दों के अन्तिम अ के स्थान में ए होता है, यदि उनसे आगे ङि (सप्तमी-एकवचन) और ङस् (षष्ठी-एकवचन) से भिन्न विभक्तियाँ आती हों। जैसे :—देवेहिं, देवेसु, णउलेहिं, णउलेसु (देवैः देवेषु, नकुलैः, नकुलेषु)

(१०) अदन्त (अ से अन्त होनेवाले) शब्द से पर में आनेवाले भिस के स्थान में केवल (अनुनासिक एवं अनुस्वार से रहित), सानुनासिक और सानुस्वार 'हि' आदेश होता है। जैसे—देवेहि, देवेहिँ, देवेहिं, णउलेहि, णउलेहिँ, णउलेहिं (देवैः, नकुलैः)

विशेष—'प्राकृतप्रकाश' और **'कल्पलतिका'** के अनुसार भिस् के स्थान में केवल हिम् आदेश किया जाता है।

(११) अदन्त (अ से अन्त होनेवाले) शब्द से पर में आनेवाले ङसि के स्थान में त्तो, दो, दु, हि और हित्तो आदेश होते हैं। दो और दु के दकार का लुक् भी होता है। जैसे :—देवत्तो, देवाओ, देवाउ, देवाहि और देवाहित्तो[1] (देवात्)

विशेष—(क) **प्राकृतप्रकाश** और **कल्पलतिका** के अनुसार ङसि के स्थान में आदो, दु तथा हि आदेश किये जाते हैं।

---

१. हेमचन्द्र (३. ८.) के अनुसार ङसि का लुक् होकर एक रूप 'देवा' भी होता है।

(ख) **शौरसेनी** में ङसि के स्थान में 'आदो', और 'आदु' आदेश होते हैं, किन्तु **कल्पलतिका** के अनुसार केवल 'दो' आदेश होता है।

(ग) **पैशाची** में ङसि के स्थान में 'आतो' और 'आत्तो' आदेश होते हैं।

(घ) **अपभ्रंश** में ङसि के स्थान में 'हे' और 'हू' आदेश होते हैं।

(१२) अदन्त (अ से अन्त होनेवाले) शब्द से पर में आनेवाले भ्यस् के स्थान में त्तो, दो, दु, हि, हिंतो और सुंतो आदेश होते हैं। जैसे :—देवत्तो, देवाओ, देवाउ, देवाहि, देवेहि, देवाहिंतो, देवेसुंतो (देवेभ्यः)

विशेष—अपभ्रंश में अदन्त शब्दों से पर में आनेवाले भ्यस् के स्थान में 'हुँ' आदेश होता है।

(१३) अदन्त शब्द से पर में आनेवाले ङस् (षष्ठी-एकवचन) के स्थान में 'स्स' आदेश होता है। जैसे :—देवस्स, णउलस्स (देवस्य, नकुलस्य)

विशेष—(क) **मागधी** में ङस् के स्थान में विकल्प से 'आह' आदेश होता है।

(ख) **अपभ्रंश** में ङस् के स्थान में सु, हो, स्सो ये आदेश होते हैं।

(१४) अदन्त शब्द से पर में आनेवाले ङि (सप्तमी-एकवचन) के स्थान में 'ए' और 'म्मि' आदेश होते हैं। जैसे :—देवे, देवेम्मि, णउले, णउलेम्मि (देवे, नकुले)

उपर्युक्त नियमों के अनुसार अकारान्त पुँल्लिङ्ग

देव शब्द के रूप—

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	देवो	देवा
द्वितीया	देवं	देवे, देवा
तृतीया	देवेण, देवेणं	देवेहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	देवत्तो, देवाओ, देवाउ, देवाहि देवाहित्तो इत्यादि	देवाहिंतो, देवासुंतो देवेहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	देवस्स	देवाण, देवाणं
सप्तमी	देवे, देवम्मि	देवेसु, देवेसुं
संबोधन	देव, देवो	देवा

कुल अदन्त शब्दों के रूप उक्त **देव** शब्द के समान ही प्रायः चलते हैं।

(१५) इदन्त (इ से अन्त होनेवाले) और उदन्त (उ से अन्त होनेवाले) पुँल्लिङ्ग शब्दों का सु, जस्, भिस् भ्यस् और सुप् विभक्तियों के पर में रहने पर अन्त (इ और उ) का दीर्घ होता है।

विशेष—हेमचन्द्र के मत से शस् (द्वितीया-बहुवचन) के लुक् हो जाने पर भी इदन्त-उदन्त का दीर्घ होता है।

(१६) इदन्त और उदन्त पुँल्लिङ्ग शब्दों से पर में आनेवाले जस् के स्थान में ओ और णो आदेश होते हैं। कहीं-कहीं जस् का लुक् भी हो जाता है।

विशेष—हेम० ३, २०, २१, २२ के अनुसार इदन्त-उदन्त से पुँल्लिङ्ग में जस् के स्थान में डित् अउ-अओ आदेश और उदन्त से केवल डित् अवो आदेश विकल्प से होते हैं। णो आदेश भी विकल्प से होता है। डित् होने से पूर्व के 'टि' का लोप जानना चाहिए।

(१७) इदन्त और उदन्त पुँल्लिङ्ग शब्दों से पर में आनेवाले शस् के स्थान में नित्य और ङस् के स्थान में विकल्प से णो आदेश होता है।

विशेष—अपभ्रंश में इदन्त-उदन्त से पर में आनेवाले 'ङसि' के स्थान में 'हे', 'भ्यस्' के स्थान में 'हुं' और ङि के स्थान में हि आदेश होते हैं।

(१८) इदन्त और उदन्त शब्दों से पर में आनेवाले 'टा' (तृतीया-एकवचन) के स्थान में 'णा' आदेश होता है।

विशेष—अपभ्रंश में टा के स्थान में सानुस्वार ए और ण आदेश होते हैं।

(१९) शेष रूपों की सिद्धि अदन्त शब्दों के समान ही जाननी चाहिए।

उपर्युक्त नियमों के अनुसार इदन्त-पुँल्लिङ्ग

गिरि शब्द के रूप—

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	गिरी	गिरीओ, गिरिणो
द्वितीया	गिरिं	गिरिणो
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि-हिँ-हिं

पञ्चमी	गिरित्तो इत्यादि	गिरिहिंतो, गिरिसुंतो इत्यादि
षष्ठी	गिरिणो, गिरिस्स	गिरिण, गिरिणं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु, गिरीसुं
संबोधन	गिरि	गिरीओ

हेमचन्द्र (३, १६-२४) के अनुसार **गिरि** शब्द के रूप—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	गिरी	गिरी, गिरवो, गिरउ, गिरिणो,
द्वितीया	गिरिं	गिरी, गिरिणो
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	गिरिणो, गिरित्तो गिरीओ, गिरीउ गिरीहिंतो	गिरित्तो, गिरीओ, गिरीउ, गिरीहिंतो, गिरीसुंतो
षष्ठी	गिरिणो, गिरिस्स	गिरीण, गिरीणं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु, गिरीसुं
संबोधन	गिरि, गिरी	गिरिणो, गिरओ, गिरउ, गिरी

उदन्त पुँल्लिङ्ग **गुरु** शब्द के रूप:—

प्रथमा	गुरू	गुरुओ, गुरुणो
द्वितीया	गुरुं	गुरुणो
तृतीया	गुरुणा	गुरुहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	गुरुत्तो इत्यादि	गुरुहिंतो इत्यादि
षष्ठी	गुरुणो, गुरुस्स	गुरुणं, गुरुण
सप्तमी	गुरुम्मि	गुरूसु, गुरूसुं
संबोधन	गुरु	गुरूओ

पुँल्लिङ्ग में कुल इकारान्त, उकारान्त शब्दों के रूप **गिरि** और **गुरु** शब्दों के समान ही होते हैं।

हेमचन्द्र के अनुसार **गुरु** शब्द के रूप:—

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	गुरू	गुरू, गुरवो, गुरओ गुरउ, गुरुणो
द्वितीया	गुरुं	गुरू, गुरुणो
तृतीया	गुरुणा	गुरूहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	गुरुणो, गुरुत्तो, गुरुओ गुरुउ, गुरूहिंतो	गुरुत्तो, गुरूओ, गुरूउ गुरूहिंतो, गुरूसुंतो
षष्ठी	गुरुणो, गुरुस्स	गुरूण, गुरूणं
सप्तमी	गुरुम्मि	गुरूसु, गुरूसुं
संबोधन	गुरु, गुरू	गुरू, गुरुणो, गुरवो गुरउ, गुरओ

(२०) ऋकारान्त शब्दों के आगे किसी भी विभक्ति के आने पर अन्त्य ऋ के स्थान में 'आर' आदेश होता है और उसका रूप अदन्त शब्दों जैसा पाया जाता है।

(२१) सु और अम् को छोड़ कर शेष सभी विभक्तियों के पर में होने पर ऋकारान्त शब्द के अन्त्य ऋ के स्थान में विकल्प से उकार होता है। उत्व पक्ष में उकारान्त शब्दों के जैसे रूप होते हैं।

(२२) संबोधनवाले सु के पर में रहने पर ऋदन्त शब्द-के अन्तिम ऋ के स्थान में 'अ' आदेश विकल्प से होता है।

किन्तु जो ऋकारान्त शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ हो उसमें उक्त नियम लागू नहीं होता है। जैसे :—हे पिअ, हे पिअर (हे पितः)

विशेष—कर्तृशब्द विशेषणवाची ऋकारान्त है, अतः उक्त नियम लागू नहीं हुआ। इससे 'हे कत्तार' रूप होगा।

(२३) पितृ, भ्रातृ और जामातृ शब्दों से पर में किसी भी विभक्ति के आने पर ऋकार के स्थान में 'आर' का अपवाद 'अर' आदेश होता है।

विशेष—(क) 'अर' आदेश होने पर उसके रूप भी अदन्त शब्दों के समान ही चलते हैं।

(ख) सु के पर में रहने पर ऋदन्त शब्दों के ऋ के स्थान में 'आ' आदेश विकल्प से होता है।

उपर्युक्त नियमों के अनुसार भर्तृ शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	भत्तारो	भत्तुणो भत्तारा
द्वितीया	भत्तारं	भत्तुणो, भत्तारे
तृतीया	भत्तुणा, भत्तारेण	भत्तारेहिं भत्तुहिं
पञ्चमी	भत्तारादो, भत्तुणो, इत्यादि	भत्तारहिंतो, भत्तुहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	भत्तुणो, भत्तारस्स	भत्तुणं, भत्ताराणं
सप्तमी	भत्तारे, भत्तारम्मि, भत्तुम्मि	भत्तुसु, भत्तारेसु
संबोधन	हे भत्तार	हे भत्तारा

हेमचन्द्र (३, ३९, ४०, ४४, ४८) के अनुसार भर्तृ शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	भत्तारो	भत्तारा, भत्तू, भत्तुणो भत्तउ, भत्तओ
द्वितीया	भत्तारं	भत्तारे, भत्तू, भत्तुणो
तृतीया	भत्तुणा, भत्तारेण	भत्तूहिं, भत्तारेहिं
पञ्चमी	भत्तुणो, भत्तूओ, भत्तूउ, भत्तूहि, भत्तूहिंतो, भत्ताराओ, भत्ताराउ, भत्ताराहि, भत्ताराहिंतो, भत्तारा	भत्तू, भत्तूओ, भत्तूहिंतो, भत्तूसुंतो, भत्ताराओ, भत्ताराउ, भत्ताराहि, भत्तारेहि, भत्ताराहिंतो, भत्तारेहिंतो, भत्तारासुंतो, भत्तारेसुंती
षष्ठी	भत्तुणो, भत्तुस्सं, भत्तारस्स	भत्तूणं, भत्तूण, भत्ताराणं, भत्ताराण
सप्तमी	भत्तुम्मि, भत्तारे, भत्तारम्मि	भत्तूसु, भत्तारेसु
संबोधन	हे भत्तार	हे भत्तारा

कुल ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप भर्तृ शब्द के समान ही चलते हैं।

ऋकारान्त **पितृ** शब्द के रूप :—

प्रथमा	पिआ, पिअरो	पिअरा
द्वितीया	पिअरं	पिअरे, पिदुणो
तृतीया	पिअरेण, पिदुणा	पिअरेहिं
पञ्चमी	पिअरादो, पिदुणो, इ०	पिअरहिंतो, पिदुहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	पिअरस्स, पिदुणो	पिअराणं, पिदुणं

	एकवचन	बहुवचन
सप्तमी	पिअरे, पिअरम्मि, पिदुम्मि	पिअरेसु, पिदुसुं
संबोधन	हे पिअ, हे पिअर	हे पिअरा

पितृ शब्द के समान ही **भ्रातृ** और **जामातृ** शब्दों के रूप चलते हैं।

हेमचन्द्र (३. ३९-४०, ४४-४८.) के अनुसार **पितृ** शब्द के रूप :—

प्रथमा	पिआ[1], पिअरो	पिअरा, पिउणो, पिअवो, पिअओ, पिअउ पिऊ
द्वितीया	पिअरं	पिअरे, पिअरा, पिउणो, पिऊ
तृतीया	पिअरेण, पिअरेणं, पिउणा इत्यादि	पिअरेहि-हिं-हिँ-, पिऊहिं-हिँ-हि इत्यादि
संबोधन	पिअ, पिअरं	पिअरा, पिउणो, पिअवो इत्यादि

शेष विभक्तियों के रूपों का ऊह कर लेना चाहिए।

(२४) **प्राकृतप्रकाश** और **प्राकृतकल्पलतिका** में ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों के साधन के लिए अलग सूत्र नहीं देखे जाते। इससे सिद्ध होता है कि उनके (ईकारान्त-ऊकारान्त के) कार्य भी क्रमशः इकारान्त-उकारान्त शब्दों के समान ही होते हैं।

(२५) **हेमचन्द्र** ने सभी विभक्तियों में क्विबन्त ईकारान्त-ऊकारान्त शब्दों के दीर्घ ई ऊ के लिए ह्रस्व का विधान किया है। और केवल संबोधन के एकवचन में अपने नियम को वैकल्पिक माना है।

---

१. शौरसेनी में प्रथमा के एकवचन में पिदा रूप होता है। देखिए : 'तादकण्णो वि एदाए पिदा'—अभिज्ञान-शाकुन्तल

(२६) पुँल्लिङ्ग में गो शब्द का गाव यह रूप होता है। इस लिए इसके रूप अदन्त शब्दों के समान ही चलते हैं।

स्त्री-प्रत्यय

(२७) प्राकृत में कुछ ही ऐसे शब्द हैं, जिनमें विशेष नियमों के अनुसार विशेष स्त्री-प्रत्यय आते हैं। शेष शब्दों के आगे संस्कृत के ही अनुसार स्त्री-प्रत्यय आते हैं।

(२८) पाणिनि (४-१-१५) के अनुसार अण् आदि प्रत्यय निमित्तक जो ङीप् होता है, वह प्राकृत में विकल्प से होता है। जैसे :—साहणी, साहणा, कुरुचरी, कुरुचरा।

(२९) अजातिवाची पुँल्लिङ्ग नाम (प्रातिपदिक) से स्त्री-लिङ्ग को बतलाने में विकल्प से ङी प्रत्यय होता है। जैसे :—नीली, नीला; काली, काला; हसमाणी, हसमाणा; सुप्पणही, सुप्पणहा; इमीए, इमाए; इमीणं, इमाणं; एईए, एआए; एईणं, एआणं।

विशेष—(क) कुमार्यादि में संस्कृत के समान नित्य ही ङी होता है। कुमारी, गौरी इत्यादि।

(ख) जातिवाची में उक्त नियम के नहीं लगने से करिणी, अया, एलया इत्यादि रूप होते हैं।

(३०) छाया और हरिद्रा शब्दों में 'आप्' का प्रसङ्ग (प्राप्ति) होने पर विकल्प से 'ङी' प्रत्यय होता है। जैसे :—छाही, छाहा;[1] हलद्दी, हलद्दा।

(३१) स्त्रीलिङ्ग में स्वस्रादि[2] शब्दों से पर में डा प्रत्यय

१. हेमचन्द्र के अनुसार 'छाया' पाठ है। देखें हेम० ३. ३४.

२. स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥ सिद्धा. कौ. अजन्तस्त्री.

होकर ससा आदि रूप हो जाते हैं और उनके रूप आदन्त शब्दों जैसे चलते हैं। जैसे :—ससा, नणन्दा, दुहिआ।

(३२) सु, अम् और आम्वर्जित[1] सुप् (सभी विभक्तियों) के पर में रहने पर किम्, यद् और तद् शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में 'ङी' प्रत्यय विकल्प से होता है। जैसे :—कीओ, काओ; कीए, काए; कीसु, कासु; जीओ, जाओ; तीओ, ताओ।

(३३) स्त्रीलिङ्ग शब्द से पर में आनेवाले जस् और शस् के स्थान में विकल्प से 'उत्' और 'ओत्' आदेश होते हैं। और उनसे पूर्व के ह्रस्व स्वर का विकल्प से दीर्घ हो जाता है। जैसे :—मालाउ, मालाओ; पक्ष में-माला। बुद्धीउ, बुद्धीओ, पक्ष में बुद्धी। सहीउ, सहीओ, पक्ष में सही। धेणूउ, धेणूओ, पक्ष में धेणू। वहूउ- वहूओ, पक्ष में वहू।

विशेष—शौरसेनी में स्त्रीलिङ्ग शब्द से जस् का उत् नहीं होता है।

(३४) स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम (प्रातिपदिक) से पर में आनेवाले टा, ङस् और ङी के स्थान में 'अत्' 'आत्' 'इत्' और 'एत्' आदेश होते हैं। पूर्व के ह्रस्व स्वर का दीर्घ भी होता है। आदन्त शब्द से टादि के स्थान में केवल आत् आदेश नहीं होता। उक्त चारों आदेश जब ङसि के स्थान में होते हैं, तब उनके पूर्व के ह्रस्व स्वर का विकल्प से दीर्घ हो जाता है। जैसे :—मुद्धाअ, मुद्धाइ, मुद्धाए; बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए।

विशेष—(क) **अपभ्रंश** में टा के स्थान में एत् होता है।

---

१. उक्त नियम हेमचन्द्र के अनुसार है। किन्तु एच. भट्टाचार्य अपने प्राकृत व्याकरण में 'अनामि सुपि' लिखते हैं। पृ. १०७, पं. १७

(ख) **अपभ्रंश** में ङसि और ङस् के स्थान में हे, भ्यस् और आम् के स्थान में हुं और ङि के स्थान में हिँ होते हैं।

(३५) अम् विभक्ति के पर में रहने पर स्त्रीलिङ्ग शब्द के अन्तिम दीर्घ को ह्रस्व विकल्प से होता है।

(३६) स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान दीर्घ ईकारान्त शब्द से पर में आनेवाले सु. जस् और शस् के स्थान में 'आ' आदेश विकल्प से होता है।

(३७) संबोधनवाली विभक्ति के पर में रहने पर आबन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द के अन्तिम आ को 'ए' आदेश होता है।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग **लता** शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	लदा	लदा, लदाओ, लदाउ
द्वितीया	लदं	लदा, लदाओ, लदाउ
तृतीया	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदाहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	लदादो, लदाए, इत्यादि	लदाहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदाणं, लदाण
सप्तमी	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदासु, लदासुं
संबोधन	हे लदे	हे लदाओ

हेमचन्द्र के अनुसार **लता** शब्द के रूप :—

प्रथमा	लदा	लदा, लदाओ, लदाउ
द्वितीया	लदं	लदा, लदाओ, लदाउ

	एकवचन	बहुवचन
तृतीया	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदाहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	लदाए, लदाइ, लदाअ लदत्तो, लदाओ, लदाउ लदाहिंतो, इत्यादि	लदत्तो, लदाओ, लदाउ लदाहिंतो, लदासुंतो
षष्ठी	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदाण, लदाणं
सप्तमी	लदाए, लदाइ, लदाअ	लदासु, लदासुं
संबोधन	हे लदे, लदा	हे लदा, लदाओ, लदाउ

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग बुद्धि शब्द के रूप :—

प्रथमा	बुद्धी	बुद्धी, बुद्धीओ, बुद्धीउ
द्वितीया	बुद्धिं	बुद्धी, बुद्धीओ, बुद्धीउ
तृतीया	बुद्धीए, बुद्धीइ, बुद्धीआ, बुद्धिअ	बुद्धीहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	बुद्धीए, बुद्धीइ, इत्यादि	बुद्धीहिंतो, बुद्धीसुन्तो इत्यादि
षष्ठी	बुद्धीए, बुद्धीइ, बुद्धीआ, बुद्धीअ	बुद्धीणं, बुद्धीण
सप्तमी	बुद्धीए, बुद्धीइ, बुद्धीआ, बुद्धीअ	बुद्धीसु, बुद्धीसुं
संबोधन	हे बुद्धी	हे बुद्धी, बुद्धीओ, इत्यादि

हेमचन्द्र के अनुसार बुद्धि शब्द के रूप :—

प्रथमा	बुद्धी	बुद्धी, बुद्धीओ, बुद्धीउ
द्वितीया	बुद्धिं	बुद्धी, बुद्धीओ, बुद्धीउ
तृतीया	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए	बुद्धीहि-हिँ-हि
पञ्चमी	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धित्तो बुद्धीइ, बुद्धीए, बुद्धीओ बुद्धीउ, बुद्धीहिंतो	बुद्धित्तो, बुद्धीओ-उ- हिंतो-सुंतो

	एकवचन	बहुवचन
षष्ठी	बुद्धीअ-आ-इ-ए	बुद्धीण-णं
सप्तमी	" " "	बुद्धीसु-सुं
संबोधन	हे बुद्धि, बुद्धी	हे बुद्धी, बुद्धीओ, बुद्धीउ

कुल इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप उक्त **बुद्धि** शब्द के समान ही चलते हैं। ऐसे ही **हेमचन्द्र** के अनुसार **धेणु, सही, वहू** शब्दों के रूप भी चलते हैं।

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग **धेणु** शब्द के रूप:—

प्रथमा	धेणू	धेणू, धेणूओ, धेणूउ
द्वितीया	धेणुं	" " "
तृतीया	धेणूए-इ-आ-अ	धेणूहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	धेणूत्तो धेणूइ, इत्यादि	धेणूहिंतो-सुंतो
षष्ठी	धेणूए-इ-आ-अ	धेणूणं, धेणूण
सप्तमी	" " " "	धेणूसु-सुं
संबोधन	हे धेणु, धेणू	हे धेणू, धेणूओ, इत्यादि

सभी उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप **धेणु** शब्द के समान ही चलते हैं।

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग **नदी** शब्द के रूप:—

प्रथमा	नई, नईआ	नईओ, नईआ
द्वितीया	नइं	नई, नईओ, नईआ
तृतीया	नईए-इ-आ-अ	नईहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	नईए, नईअ, नइत्तो, इत्यादि	नई, नईहिंतो, नईसुंतो

	एकवचन	बहुवचन
षष्ठी	नईए,–इ,–आ–अ	नईणं, नईण
सप्तमी	,, ,, ,, ,,	नईसु, नईसुं
संबोधन	हे नइ, नई	हे नई, नईओ, इत्यादि

कुल ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप **नदी** शब्द के समान ही चलते हैं।

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग **वहू** (वधू) शब्द के रूप :—

प्रथमा	वहू	वहू , वहूओ, इत्यादि
द्वितीया	वहुं	वहू , वहूओ, इत्यादि
तृतीया	वहूए–इ–आ–अ	वहूहि–हिँ –हिं
पञ्चमी	वहूदो, वहूए, इत्यादि	वहूहिंतो–सुंतो
षष्ठी	वहूए–इ–आ–अ	वहूणं, वहूण
सप्तमी	,, ,, ,, ,,	वहूसु–सुं
संबोधन	हे वहु, वहू	हे वहू, वहूओ, इत्यादि

कुल ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप **वहू** शब्द के समान ही चलते हैं।

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग **मातृ**[1] शब्द के रूप :—

---

१. हेमचन्द्र (३. ४६) के अनुसार मातृ शब्द के दो प्राकृत रूप मिलते हैं–माआ (माता) और माअरा (देवी, Goddess)। हमें इस शब्द से ३. ४४. के अनुसार 'माउ' और १. १३५ के अनुसार 'माइ' रूप भी मिलते हैं। इनमें 'माआ' और 'माअरा' के रूप माला एवं लता शब्दों के अनुसार, माउ के रूप धेणु के अनुसार और माइ के रूप वुद्धि शब्द के अनुसार चलते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	माआ	माआ
द्वितीया	माअं[1]	माए
तृतीया	माआइ, माआअ, इत्यादि	माएहि–हिँ–हिं
पञ्चमी	माआदो, माआए, इत्यादि	माआहिंतो, माआसुंतो
षष्ठी	माआइ, माआअ, इत्यादि	माआणं, माआण
सप्तमी	" " "	माआसु–सुं
संबोधन	हे माअ, इत्यादि	हे माआ, इत्यादि

स्त्रीलिङ्ग में गो शब्द के **गावी** और **गाई** ये दो रूप होते हैं। इन दोनों के रूप ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के अनुसार चलते हैं।

अजन्त नपुंसक लिङ्ग के शब्दों के सम्बन्ध में नियम :—

(३८) नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान स्वरान्त शब्दों से पर में आनेवाले सु (प्रथमा के एकवचन) के स्थान में 'म्' होता है। जैसे :—वणं (वनम्)

(३९) नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान स्वरान्त शब्दों से पर में आनेवाले जस् और शस् (प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन) के स्थान में इँ, इं और णि आदेश होते हैं। जैसे :—कुलाइँ, कुलाइं और कुलाणि।

विशेष—(क) **शौरसेनी में** नपुंसक लिङ्ग में जस्-शस् के स्थान में केवल 'णि' आदेश होता है।

(ख) **अपभ्रंश में** जस्-शस् के स्थान में 'इं' आदेश होता है।

---

1. शौरसेनी में द्वितीया के एकवचन में 'मादरं' यह रूप होता है।

(४०) नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान शब्दों से पर में आनेवाले संबोधन के 'सु' का लोप होता है।

(४१) सु (प्रथमा के एकवचन) के पर में रहने पर इदन्त-उदन्त नपुंसक शब्दों के अन्तिम इ और उ को दीर्घ नहीं होता है।

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग **कुल** शब्द के रूप :—

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	कुलं	कुलाइँ, कुलाइं, कुलाणि
द्वितीया	"	" " "
संबोधन	हे कुल	

शेष रूप पुंल्लिङ्ग के समान चलते हैं।

इकारान्त नपुंसक **दधि** शब्द के रूप :—

प्रथमा	दहिं, दहि	दहीइँ, दहीइं, दहीणि
द्वितीया	" "	" " "
संबोधन	हे दहि	

उकारांन्त नपुंसक **मधु** शब्द के रूप :—

प्रथमा	महुं, महु	महूइँ, महूइं, महूणि
द्वितीया	" "	" " "
संबोधन	हे महु	

शेष रूपों का ऊह पुँल्लिङ्ग आदि से कर लेना चाहिए।

हलन्त शब्दों के साधनसंबन्धी नियम एवं उनके रूप :—

प्राकृत में हलन्त शब्द नहीं होते हैं। कुछ हलन्त शब्दों के

अन्त्य व्यञ्जनों का लोप होता है और कुछ हलन्त शब्द अजन्त के रूप में परिणत हो जाते हैं। अतः हलन्त शब्दों के साधनार्थ विशेष नियम नहीं हैं।

केवल **आत्मन्** और **राजन्** शब्दों के साधनार्थ प्राकृत के कुछ प्राचीन आचार्यों ने नियम बनाये हैं। वे ही नियम प्रयोग के अनुसार अन्य नान्त शब्दों के लिए भी उपयुक्त माने गये हैं।

राजन् शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	राआ	राआणो, राआ
द्वितीया	राअं	राए, राआणो
तृतीया	रण्णा, राइणा	राएहिं
पञ्चमी	राआदो, रण्णो, राआदु, राइणो	राआहिंतो, राइहिंतो
षष्ठी	रण्णो, राइणो, राअस्स	राआणं, राइणं, राआण्ण
सप्तमी	राअम्मि, राए, राइम्मि	राएसु, राएसुं
संबोधन	हे राआ, राअं	

हेमचन्द्र (३, ४९–५५,) के अनुसार **राजन्** शब्द के रूप:—

प्रथमा	राया	राया, रायाणो, राइणो
द्वितीया	रायं, राइणं	राये, राया, रायाणो, राइणो
तृतीया	राइणा, रण्णा; राएण, राएणं	राएहि-हिँ-हिं; राईहि-हिँ-हिं
पञ्चमी	रण्णो, राइणो, रायत्तो, इ०	रायत्तो, राइत्तो, इत्यादि
षष्ठी	रण्णो, राइणो, रायस्स	राईण, राईणं; रायाण, रायाणं

	एकवचन	बहुवचन
सप्तमी	राये, रायम्मि, राइम्मि	राईसु, राईसुं, राएसु, राएसुं
संबोधन	हे राया, राय	राया, रायाणो, राइणो

आत्मन् शब्द के रूप :—

प्रथमा	अप्पा, अप्पाणो	अप्पाणा, अप्पाण्णो, अप्पा
द्वितीया	अप्पाणं, अप्पं	अप्पाणे, अप्पणो
तृतीया	अप्पाणेण, अप्पणा	अप्पाणेहिं, अप्पेहिं
पञ्चमी	अप्पाणाओ, अप्पणो अप्पाओ, अप्पादो, इ०	अप्पाणाहिंतो, अप्पाहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	अप्पाणणस्स, अप्पणो	अप्पाणाणं, अप्पाणं
सप्तमी	अप्पाणम्मि, अप्पे	अप्पाणेसु, अप्पेसु
संबोधन	हे अप्पं, इत्यादि	

विशेष—हेमचन्द्र (३. ५६-५७.) के अनुसार आत्मन् शब्द के दो प्राकृत रूप अप्प और अप्पाण होते हैं। इनमें अप्प के रूप राजन् शब्द जैसे चलते हैं। और 'अप्पाण' के वच्छ अथवा देव शब्द के अनुसार। तृतीया के एकवचन में उसके दो और अधिक रूप होते हैं–'अप्पणिआ' और 'अप्पणइआ'

(४२) प्राकृत-कल्पलतिका के अनुसार 'भवत्' और 'भगवत्' के अन्तिम तकार के स्थान में सु विभक्ति के पर में रहने पर अनुस्वार किया जाता है। यह नियम यहाँ भी गृहीत है। जैसे :—भवं (भवान्), हे भवं (हे भवन्), भअवं (भगवान्), हे भअवं (हे भगवन्)

(४३) प्राच्या में भवत् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में भोदी यह रूप होता है।

सर्वनाम शब्दों के साधन के नियम और रूप :—

प्राकृत में सर्वनाम के संबंध में सामान्य नियम देखने में नहीं आते हैं। जो भी नियम देखने में आते हैं, विशेष स्थलों के लिए विशेष नियम हैं। केवल अदन्त सर्वनाम शब्दों की सिद्धि के लिए कुछ साधारण नियम हैं, जिनका नीचे उल्लेख हुआ है। अन्य विशेष नियमों का परिज्ञान उदाहरणों द्वारा ही सम्भव है। अदन्त सर्वनाम शब्दों के विषय में नियम ये हैं :—

(४४) सर्वादिगण-पठित शब्दों के अन्तिम अ से पर में आनेवाले जस् के स्थान में 'ए' आदेश होता है।

विशेष—कहीं कहीं सर्वादि के प्रथम अ का वैकल्पिक एत्व होकर सेव्वे और सर्वे रूप होते हैं।

(४५) अदन्त सर्वादि से पर में आनेवाले 'आम्' के स्थान में 'एसिं' आदेश विकल्प से होता है। तथा 'ङि' के स्थान में 'स्सि', 'म्मि' और 'त्थ' ये आदेश होते हैं और इदम् तथा एतद् शब्दों को छोड़कर अन्य सर्वादि शब्दों से आनेवाले ङि के स्थान में 'हिं' आदेश भी होता है।

पुँल्लिङ्ग में सर्व शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सव्वो	सव्वे
द्वितीया	सव्वं	सव्वे
तृतीया	सव्वेण	सव्वेहिं
पञ्चमी	सव्वदो, सव्वत्तो, इत्यादि	सव्वेहिंतो, इत्यादि
षष्ठी	सव्वस्स	सव्वेसिं, सव्वाणं

	एकवचन	बहुवचन
सप्तमी	सव्वस्सिं, सव्वम्मि, सव्वत्थ, सव्वहिं	सव्वेसु, सव्वेसुं
संबोधन	हे सव्व, सव्वो	सव्वे

स्त्रीलिङ्ग में **सर्व** शब्द के रूप आदन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के समान तथा नपुंसक में सर्व शब्द के रूप अदन्त नपुंसक लिङ्गवाले शब्दों के समान चलते हैं।

विश्व आदि सर्वादिगण के शब्दों के रूप इसी सर्व शब्द के रूपों के समान चलते हैं।

विशेष—अपभ्रंश में **सर्व** के स्थान में **साह** आदेश होता है। अदन्त सर्वादि से पर में आनेवाले ङसि का 'हां' आदेश होता है। ङि के स्थान में केवल हिं आदेश ही होता है।

पुँलिङ्ग में **यद्** शब्द के रूप :—

प्रथमा	जो	जे
द्वितीया	जं	जे
तृतीया	जेण, जिण	जेहि
पञ्चमी	जत्तो, जदो, जम्हा, जाओ	जाहिंतो, जासुंतो, इत्यादि
षष्ठी	जस्स, जास[1]	जाणं, जेहिं[2]
सप्तमी	जस्सिं, जम्मि, जहिं[3], जत्थ	जेसु

१. अपभ्रंश में पुँल्लिङ्ग में 'जासु' और स्त्रीलिङ्ग में 'जहे' होता है।

२. शौरसेनी में केवल जाणं और टक्कभाषा में 'जाहं' 'जाणं' ये दो रूप होते हैं।

३ जब सप्तमी के एकवचन से समय का बोध कराना हो तब यद् शब्द का 'जाहे' और 'जाला' ये रूप हो जाते हैं।

(४६) यद् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में आम्‌वर्जित विभक्तियों के पर में रहने पर ङा विकल्प से होता है। जैसे :—जी, जीया इत्यादि ।

पुंल्लिङ्ग में तद् शब्द[1] के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सो	ते, ऐ
द्वितीया	तं, णं	ते, दे
तृतीया	तेण, तिणा[2], णेण	तेहिं, णेहिं
पञ्चमी	तत्तो, तदो, ता, तम्हा, ताओ	ताहिंतो इत्यादि
षष्ठी	तास, से, तस्स[3]	ताणं, तेसिं, सिं, दाणं
सप्तमी	तस्सिं, तम्मि, तत्थ, तहिं	तेसु इत्यादि

(४७) तद् शब्द का स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा के एकवचन में 'सा' यह रूप होता है और नपुंसक लिङ्ग में 'तं'। आम्‌वर्जित

१. हेमचन्द्र के अनुसार तद् शब्द के रूप निम्नलिखित हैं :— प्रथमा-एक० स, सो; बहु० ते, णे; द्वितीया-एक० तं, णं; बहु० ते, ता, णे, णा; तृतीया-एक० तेण, णेण, तिणा; बहु० तेहिं इत्यादि; पञ्चमी-एक० तम्हा; बहु० तेहिं इत्यादि; षष्ठी-एक० तस्स, तास; बहु० तास, तेसिं; सप्तमी-एक० तस्सिं, ताहे, ताला, तइआ; बहु० तेसु, णेसु, तेसुं, णेसुं ।

२. पैशाची में पुंल्लिङ्ग में 'नेन' और स्त्रीलिङ्ग में 'नाए' रूप होते हैं।

३. शौरसेनी में ङस् में तस्स, से और आम् में ताणं होते हैं। अपभ्रंश में ङस् के पर में रहने पर पुंल्लिङ्ग में तह और स्त्रीलिङ्ग में तासु होते हैं। टक्क भाषा में आम् के पर में रहने पर 'ताहं' और 'ताणं' होते हैं।

विभक्तियों में तद् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङी का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे :—ती, तीआ इत्यादि।

पुंल्लिङ्ग में एतद् शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	एस, एसो	एते, एदे
द्वितीया	एतं	एते, एदे
तृतीया	एदिणा, एदेण, एणं	एतेहिं, एदेहिं, एएहिं
पञ्चमी	एत्तो, एत्ताहो, एआओ, इ०	एतेहिंतो इत्यादि
षष्ठी	एअस्स, एदस्स, से	सिं, एएसिं, एदाणं
सप्तमी	अयम्मि, एत्थ, इअम्मि, एअम्मि, एअस्सि	एएसु, एदेसु इत्यादि

विशेष—(क) हेमचन्द्र (३, ८२) के अनुसार पञ्चमी के एकवचन में **'एत्तो'** और **'एत्ताहे'** रूप होते हैं और पक्ष में **'एआओ'** **'एआउ'** **'एआहि'** **'एआहिंतो'** और **'एआ'** रूप होते हैं।

(ख) हेमचन्द्र (३. ८४) के अनुसार **एतद्** शब्द से सप्तमी के एकवचन में 'म्मि' के पर में रहने पर **'अयम्मि'** **ईयम्मि** और पक्ष में **एअम्मि** रूप होते हैं।

(ग) अन्य रूपों के लिए देखिए हेमचन्द्र के ३. ६१, ८१, ८५.

पुंल्लिङ्ग में अदस् शब्द के रूप :—

प्रथमा	अमू	अमूणो
द्वितीया	अमुं	अमूणो
तृतीया	अमुणा	अमूहिं

	एकवचन	बहुवचन
पञ्चमी	अमूओ, अमूउ इत्यादि	अमूहिंतो इत्यादि
षष्ठी	अमुणो, अमुस्स	अमूणं
सप्तमी	अमुम्मि, अयम्मि, इअम्मि	अमूसु इत्यादि

विशेष—(क) हेमचन्द्र (३. ८७) के अनुसार तीनों लिङ्गों में **अदस्** शब्द के प्रथमा एकवचन में **'अह'** रूप भी होता है।

(ख) **शौरसेनी** में **'अह'** रूप नहीं होता। साधारणतः स्त्रीलिङ्ग में अमू और नपुंसक में अमुं रूप प्रयुक्त होते हैं।

पुंल्लिङ्ग में **इदम्** शब्द के रूप :—

प्रथमा	इमो, अअं	इमे
द्वितीया	इमं, णं	इमे
तृतीया	इमिणा, इमेण, णेण	एहिं, इमेहिं, णेहिं
पञ्चमी	इदो, इमादो, इत्तो इत्यादि	इमेहितो इत्यादि
षष्ठी	अस्स, इमस्स, से	इमाणं, सिं
सप्तमी	अस्सिं, इमस्सिं, इह, णे	एसु

विशेष—(क) **इदम्** शब्द के स्त्रीलिङ्ग में 'सु' विभक्ति के पर में रहने पर **'इअं'**, **'इमिआ'** और नपुंसक में सु और अम् के पर में रहने पर **'इदं'** और **'इणं'** रूप होते हैं।

(ख) **शौरसेनी** में स्त्रीलिङ्ग **इदम्** शब्द के प्रथमा एकवचन में **'इअं'** और नपुंसक में **'इदम्'** **'इमम्'** रूप

होते हैं। पुंलिङ्ग-नपुंसक लिङ्ग में षष्ठी के बहुवचन में केवल 'इमाणं' यह रूप होता है।

पुंल्लिङ्ग में **किम्** शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	को	के
द्वितीया	कं	के
तृतीया	किणा, केण	केहिं
पञ्चमी	कीणो, कीस, कम्हा, कत्तो, कदो	केहिंतो इत्यादि
षष्ठी	कास, कस्स	कास, केसिं, काणं
सप्तमी	कहिं, कस्सिं, कम्मि, कत्थ, काहे, काला, कइआ	केसु इत्यादि

विशेष—(क) **अपभ्रंश में किम्** के स्थान में **'काइ'** और **'कवण'** आदेश विकल्प से होते हैं।

(ख) स्त्रीलिङ्ग में **'का'** और नपुंसक में **'किं'** रूप होते हैं।

(ग) **शौरसेनी** में ङसि में **'कदो'** और उसी विभक्ति में **अपभ्रंश में 'कहाँ'** रूप होते हैं।

(घ) स्त्रीलिङ्ग में ङस् के पर में रहने पर **'कस्सा'** **कीसे, किअ, कीआ, कीई, 'कीए'** होते हैं। **शौरसेनी में** पुंल्लिङ्ग में **'कास'** नहीं होता है। **अपभ्रंश** में पुंल्लिङ्ग **किम्** शब्द का ङस् में **'कासु'** रूप होता है और स्त्रीलिङ्ग में **'कहे'**।

युष्मद् शब्द के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुमं, तं, तुं, तुवं, तुह	झे, तुब्भ, तुज्झे, तुम्ह, तुम्हे उम्हे, तुह्ये[1]
द्वितीया	तं, तुं, तुवं, तुमं, तुह, तुमे, तुवे[3]	वो तुज्झे, तुब्भ, तुम्हे, तुह्ये[2]
तृतीया	दे, ते, तइ, तुए, तुमं तुमइ, तुमए, तुमे, तुमाइ[4]	तुम्हेहिं, तुह्मेहिं, उम्हेहिं उज्झेहिं, तुज्झेहिं[5] इत्यादि
पञ्चमी	तत्तो, तइत्तो, तुवत्तो, तुमत्तो, तुब्भत्तो, तुम्हत्तो, तुहत्तो, तुह्यत्तो, तदो, तुव, दुहि, तुमहिंतो[6] इत्यादि	तुम्हाहिंतो, तुब्भाहिंतो, तुब्भत्तो, तुम्हत्तो, तेहिंतो दुहिंतो[7] इत्यादि

१. हेमचन्द्र ३. ९१ के अनुसार भे, तुब्भे, तुज्झ, तुम्ह, तुय्हे, उय्हे रूप होते हैं।

२. हेमचन्द्र ३. ९२ में तुए रूप बतलाया गया है।

३. हेमचन्द्र ३. ९३ में वो, तुज्झ, तुब्भे, तुम्हे, उम्हे, भे, रूप वर्णित हैं।

४. हेमचन्द्र ३. ९४ के अनुसार—भे, दि, दे, ते, तइ, तए, तुमं, तुमइ, तुमए, तुमे और तुमाइ रूप होते हैं।

५. हेमचन्द्र ३. ९५ के अनुसार—भे, तुब्भेहिं, तुज्झेहिं, उज्झेहिं, उम्हेहिं, तुय्हेहिं, उय्हेहिं ये रूप होते हैं।

६. हेमचन्द्र ३. ९६ और ९७ के अनुसार—तइत्तो, तुवत्तो, तुमत्तो, तुहत्तो, तुब्भत्तो, तुम्हत्तो, तुज्झत्तो, तत्तो, तुय्ह, तुब्भतहिन्तो, तुम्ह, तुज्झ इत्यादि रूप होते हैं।

७. हेमचन्द्र ३. ९८ के अनुसार—तुब्भत्तो, तुय्हत्तो, उय्हत्तो, उम्हत्तो तुम्हत्तो, तुज्झत्तो तथा दोदुहिहिंतो-सुंतो ये रूप होते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
षष्ठी	तुह, तुज्झ, तुम्म, तुइ, तु, तुम्ह, तुह, तुहं, तुव, तुम, तमे, तुमाइ, दे, तुब्भ[1]	वो, भे, तुज्झ, तुब्भाण तुम्हाण, तुमाण, तुहाण उम्हाण, तुवाण[2] इत्यादि
सप्तमी	तइ, तए, तुमए, तुमे, तुमाई, तइ, तुम्मि, तुमम्मि, तुवम्मि, तुहम्मि, तुज्झम्मि[3] इत्यादि	तुसु, तुम्हेसु, तुब्भेसु, तुहसु, तुमसु, तुहेसु[4] इत्यादि

शौरसेनी में युष्मद् शब्द के रूप :—

प्रथमा	तुमं	तुम्हे
द्वितीया	तुमं	तुम्हे

---

१. हेमचन्द्र ३. ९९ के अनुसार—तइ, तु, ते, तुम्हं, तुह, तुहं, तुव, तुम, तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, दे, इ, ए, तुब्भ, उब्भ, उय्ह, तुम्ह, तुज्झ, उम्ह, उज्झ, रूप होते हैं।

२. हेमचन्द्र ३. १०० के अनुसार—तु, वो, भे, तुब्भ, तुब्भं, तुब्भाण, तुवाण, तुमाण, तुहाण, उम्हाण, तुब्भाणं, तुवाणं, तुमाणं, तुहाणं, उम्हाणं, तुम्ह, तुज्झ, तुम्हं, तुज्झं, तुम्हाण, तुम्हाणं, तुज्झाण, तुज्झाणं रूप होते हैं।

३. हेमचन्द्र ३. १०१ के अनुसार—तुमे, तुमए, तुमाइ, तइ, तए, तुम्मि, तुवम्मि, तुमम्मि, तुहम्मि, तुब्भम्मि, तुम्हम्मि, तुज्झम्मि रूप होते हैं।

४. हेमचन्द्र ३. १०२ के अनुसार—तुसु, तुवेसु, तुमेसु, तुहेसु, तुब्भेसु, तुम्हेसु, तुज्झेसु, तुवसु, तुमसु, तुहसु, तुब्भसु, तुम्हसु, तुज्झसु, तुब्भासु, तुम्हासु, तुज्झासु रूप होते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
तृतीया	तए	तुम्हेहिं
पञ्चमी	तुम्हादो	तुम्हाहिंतो
षष्ठी	ते, दे, तह, तुम्ह	तुम्हाणं
सप्तमी	तइ	तुम्हेसुं

अपभ्रंश में युष्मद् शब्द के रूप :—

प्रथमा	तुह	तुम्हे, तुम्हाइं
द्वितीया	तइं, पइं	तुम्हेहिं
तृतीया	"	"
पञ्चमी	तउहोंत, तध्रुहोंत, तुह्यहोंत	तुम्हं
षष्ठी	"	तुम्हहं
सप्तमी	"	तुम्हासुं

अस्मद् शब्द के रूप :—

प्रथमा	अहं, अहम्मि, अम्मि अम्हि, हं, अहअं, म्मि[1]	मे, वअं, अम्ह, अम्हे अम्हो, मो[2]
द्वितीया	णेणं, मि, अम्मि, अम्हं मं, ममं, मिमं, अहं[3]	अम्हे, अम्हा, णो, णे, अम्ह[4]

१. हेमचन्द्र ३. १०५ के अनुसार—म्मि, अम्मि, अम्हि, हं, अहं, अहयं रूप होते हैं।

२. हेमचन्द्र ३. १०६ के अनुसार—अम्ह, अम्हे, अम्हो, मो, वयं और भे रूप होते हैं।

३. हेमचन्द्र ३. १०७ के अनुसार—णे, णं, मि, अम्मि, अम्ह, मम्ह, मं, ममं, मिमं और अहं रूप होते हैं।

४. हेमचन्द्र ३. १०८ के अनुसार—अम्हे, अम्हो, अम्ह और णे रूप होते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
तृतीया	मिमे, ममं, ममए, मए ममाइ, मइ, इणो, मओ[१]	अम्हेहिं, अम्हाहिं अम्ह, अम्हो, णे[२]
पञ्चमी	मइत्तो, ममत्तो मत्तो महत्तो, मह्यत्तो, मइदो ममदुहि[३] इत्यादि।	ममत्तो, अम्हत्तो, ममाहिंतो, ममासुंतो, ममेसुंतो, अम्हे-हिंतो[४] इत्यादि।
षष्ठी	मे, मम, मइ, मह महं, मह्य, नह्यं, अम्हं।[५]	णे, णो, मह्य, अम्ह, अम्हं, अम्हे, अम्हो, मम, अम्हाणं महाणं, मह्याणं।[६]

---

१. हेमचन्द्र ३. १०९ के अनुसार—मि, मे, ममं, ममए, ममाइ, मइ, मए रूप होते हैं।

२. हेमचन्द्र ३. ११० के अनुसार—अम्हेहि, अम्हाहि, अम्ह, अम्हे, णे रूप होते हैं।

३. हेमचन्द्र ३. १११. के अनुसार—मइत्तो, ममत्तो, महत्तो, मज्झत्तो, मत्तो रूप होते हैं। इसी प्रकार मइदो, मइदु, इत्यादि रूप बनते हैं। दो, दु, हि, हिंतो और लुक् पक्ष में भी रूपों का ऊह कर लेना चाहिए।

४. हेमचन्द्र ३. ११२. के अनुसार—ममत्तो, अम्हत्तो, ममाहिंतो, अम्हाहिंतो, ममासुंतो, अम्हासुंतो, ममेसुंतो, अम्हेसुंतो रूप होते हैं।

५. हेमचन्द्र ३. ११३. के अनुसार मे, मइ, मम, मह, महं, मज्झ, मज्झं, अम्ह, अम्हं रूप होते हैं।

६. हेमचन्द्र ३. ११४. के अनुसार णे, णो, मज्झ, अम्ह, अम्हं, अम्हे, अम्हो, अम्हाण, ममाण, महाण, मज्झाण, अम्हाणं, ममाणं, महाणं, मज्झाणं रूप होते हैं।

	एकवचन	बहुचचन
सप्तमी	मी, मइ, ममाइ, मए मे, अम्हम्मि, ममम्मि महम्मि[1]	अम्हेसु, ममेसु, महेसु मएसु, अम्हसु, ममसु महसु[2] इत्यादि

शौरसेनी में अस्मद् शब्द के रूप :—

प्रथमा	हीं, अहं	अम्हे, वयं
द्वितीया	मं	अम्हे
तृतीया	मए	अम्हेहिं
पञ्चमी	मत्तो, ममादो	अम्हेहिंतो इत्यादि
षष्ठी	मे, मम, मह	अम्ह, अम्हाणं
सप्तमी	मइ, मए	अम्हेसु

(४८) मागधी में संस्कृत के अहं और वयं के स्थान में क्रमशः हगे और हके आदेश होते हैं।

अपभ्रंश में अस्मद् शब्द के रूप :—

प्रथमा	हउ	अम्हे, अम्हइ
द्वितीया	मइ	अम्हे, अम्हइ
तृतीया	मइ	अम्हेहि
पञ्चमी	महु, मज्झ	अम्हेहिंतो
षष्ठी	महु, मज्झु	अम्हहे
सप्तमी	मयि इत्यादि	अम्हासु

१. हेमचन्द्र ३. ११५. के अनुसार—मि, मइ, ममाइ, मए, मे, अम्हम्मि, ममम्मि, महम्मि, मज्झम्मि रूप होते हैं।

२. हेमचन्द्र ३. ११७. के अनुसार—अम्मेसु, महेसु, महेसु, मज्झेसु, अम्हसु, ममसु, महसु, मज्झसु अम्हासु, रूप होते हैं।

द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों के रूप :—

	द्विशब्द	त्रिशब्द	चतुर्शब्द
प्रथमा	दो, दुवे, दोणि, वेणि, दुणि, विणि	तिण्णि	चत्तारो, चउरो, चत्तारि
द्वितीया	"	"	"
तृतीया	दोहिं, दोहि, विहि	तीहिं	चऊहिं
पञ्चमी	दोहिंतो, वेहिंतो इ०	तीहिंतो	चऊहिंतो
षष्ठी	दोण्हं, दोण्णं, वेण्णं	तिण्णं	चउण्हं
सप्तमी	दोसु, वेसु	तीसु	चउसु

(४६) अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप अदन्त शब्दों के समान चलते हैं।

(५०) स्त्रीलिङ्ग में पञ्चन् शब्द से आप् प्रत्यय होता है। जैसे :—पञ्चा, पञ्चाहिं इत्यादि।

(५१) तादर्थ्य (उसके लिए) अर्थ में षष्ठी विभक्ति विकल्प से आती है।

(५२) प्राकृत में विभक्तियों के व्यवहार का कोई विशेष नियम नहीं है। कहीं द्वितीया और तृतीया के स्थान में सप्तमी कहीं पञ्चमी के स्थान में तृतीया तथा सप्तमी और प्रथमा के बदले द्वितीया विभक्तियाँ व्यवहृत होती हैं।

पञ्चम अध्याय

[अव्यय प्रकरण]

(१) वाक्योपन्यास अर्थ में 'तं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—तं निव-पुच्छिअ-दोआरिएण (राजा से पूछे गये दौवारिक ने इस प्रकार वाक्य का उपन्यास किया।) कुमापा. ४. १.

(२) अभ्युपगम (स्वीकार) अर्थ में आम अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—आम गिम्ह-सिरी (हाँ, यह सही है कि इस उद्यान में इन दिनों ग्रीष्म ऋतु की शोभा फैली है।) कुमा. पा. ४. १.

(३) विपरीतता अर्थ में 'णवि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—उण्हेह सीअला णवि (गरम के विपरीत ठंढी अथवा गरम होती हुई भी ठंढी) कुमा. पा. ४. १.

(४) कृतकरण अर्थात् फिर से उसी क्रिया को करने अर्थ में 'पुणरुत्तं' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—पेच्छ पुणरुत्तम् (एक बार देख चुकने पर भी फिर से देखो ।) कुमा. पा. ४. १.

(५) विषाद, विकल्प, पश्चात्ताप, निश्चय और सत्य अर्थों में 'हन्दि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। **विषाद अर्थ में जैसे :**—हन्दि विदेसो (दुःख है कि हमारे लिए यह विदेश है ?); **विकल्प अर्थ में जैसे :**—जीवइ हन्दि पिआ (पता नहीं मेरी प्रियतमा जीती है अथवा नहीं !); **पश्चात्ताप अर्थ में जैसे :**—हन्दि किं पिआ मुक्का ? (क्या हमने विरह

दुःख का विना विचार किये ही प्रियतमा को छोड़ दिया ?); **निश्चय अर्थ में जैसे :**—हन्दि मरणं (मरना निश्चित है); **सत्य अर्थ में जैसे :**—हन्दि जमो गिम्हो (ग्रीष्म यमराज है, यह बात सच है।) कुमा, पा. ४. २.

(६) 'ग्रहण करो', 'लो' इस अर्थ में 'हन्द' और हन्दि अव्यय का भी प्रयोग होता है। जैसे :—हन्द महु हन्दि परिमल- मिमं (पुष्परस लो, यह गन्ध ग्रहण करो।) कुमा. पा. ४. ३.

(७) इव के अर्थ में मिव, पिव, विव, व्व, व, विअ, इन अव्ययों का प्रयोग प्राकृत में विकल्प से होता है।

मिव—जणणिं **मिव** (माता के समान)

पिव—धूअं **पिव** (पुत्री के समान)

विव—सोअरं **विव** (सोदर बहन के समान)

व्व—साअरो **व्व** (सागर के समान)

व—सहिं **व** (सखी के समान)

विअ—नत्तिं **विअ** (पौत्री के समान)

पक्ष में इव जैसे :—

इव—मउडो इव

(८) लक्षण (लक्ष्य करना) अर्थ में जेण और तेण अव्ययों का प्रयोग होता है। जैसे :—**जेण** अहुल्ला लवली (विना खिली लवली को लक्ष्य करके); फुल्लं च धूलिकम्बं **तेण** फुडा चेअ गिम्हसिरी (खिले हुए धूलि कदम्ब को लक्ष्य करके ग्रीष्म की शोभा स्फुट ही मालूम पड़ती है।) कुमा० पा० ४. ५.

(९) अवधारण (अन्ययोग व्यवच्छेद) अर्थ में णइ, चेअ, चिअ और च्च अव्ययों का प्रयोग होता है। जैसे :—

णइ—वोलीणा **णइ** वसन्त-उउ-लच्छी (वसन्त ऋतु की शोभा बीत ही गई)

चेअ—स्फुटा **चेअ** गिम्ह-सिरी (ग्रीष्म की शोभा स्फुट ही मालूम पड़ती है ।)

च्चिअ—ते **च्चिअ** धन्ना (वे ही धन्य हैं !)

च्च—स **च्च** सीलेण (स्वभाव से अच्छा-सत्-ही)

(१०) दो में एक के निर्द्धारण तथा निश्चय अर्थों में 'बले' अव्यय का प्रयोग होता है। **निर्द्धारण में जैसे :**—लयाण नोमालिआ **बले** रम्मा (सभी लताओं में नवमल्लिका अथवा नवमालिका मन को आनन्द देनेवाली है ।); **निश्चय में जैसे :**—**बले** ते मयणबाणा (निश्चय ही वे मदन (कामदेव), के बाण हैं ।)

(११) 'किल' के अर्थ में किर, इर, हिर अव्ययों का विकल्प से प्रयोग होता है। पक्ष में किल ही प्रयुक्त होता है। जैसे :—

किर—जा **किर** मल्ली (संभावना करता हूँ कि जो मल्ली है)

इर—जा **इर** जवा (संभावना करता हूँ कि जो जपा है)

हिर—सुत्ते जणम्मि जो **हिर** सद्दो चीरीण (लोगों के सो जाने पर जो झींगुरों का शब्द)

पक्ष में **किल**—एवं **किल** तेन सिविणए भणिआ ।

विशेष—किल शब्द के अर्थ प्रसिद्ध, संभावना आदि हैं ।

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिडं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है ।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और बिषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

विशेष—अहो, हंहो, हेहो, हा, नाम, अहह, ही, सि, अयि, अहाह, अरि, रि, हो, इत्यादि अव्ययों का प्रयोग प्राकृत में संस्कृत के समान करना चाहिए।

(४३) अपि के अर्थ में पि और वि का प्रयोग करना चाहिए जैसे :—इअ जंपि तं पि लविराओ।

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल भींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (भींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(४) अकारान्त आत्मनेपदी धातुओं के प्रथम-मध्यम पुरुषों के एकवचन के स्थान में क्रमशः 'ए' और 'से' आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे :—तुवरए (त्वरते); तुवरसे (त्वरसे)

(५) अदन्त धातु से 'मि' के पर में रहने पर पूर्व के 'अ' का आत्व विकल्प से होता है। जैसे :—हसामि, हसमि इत्यादि।

(६) अकारान्त धातु से 'मो' 'मु' और 'म' पर में रहें तो पूर्व के अकार के स्थान में 'इ' और 'आ' होते हैं। कहीं कहीं ए भी होता है। जैसे :—हसिमो, हसामो, हसेमो; हसिमु, हसेमु इत्यादि।

वर्तमान में अकारान्त **भण धातु** के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	भणइ, भणए	भणन्ति, भणन्ते. भणिरे
मध्यम पु०	भणसि, भणसे	भणह, भणित्था
उत्तम पु०	भणामि, भणमि	भणामो, भणिमो, भणेमो इत्यादि

विशेष—यों ही हस और पठ आदि सभी अकारान्त धातुओं के रूपों को जानना चाहिए। केवल अस धातु के रूप विशेष नियमानुसार सिद्ध होते हैं।

वर्तमान में **अस धातु** के रूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	अच्छइ, अत्थि	अच्छंति, अत्थि
मध्यम पु०	सि, अच्छसि, अत्थि	अत्थि, अच्छित्था, अच्छह
उत्तम पु०	म्हि, अत्थि, अच्छामि	म्हो, म्हा, इत्यादि

(७) स्वरान्त धातु से भूत काल में सभी पुरुषों और वचनों में विहित प्रत्यय के स्थान में 'ही' 'सि' और 'हीअ'[1] आदेश होते हैं। जैसे :—कासी, काही, काहीअ; ठासी, ठाही, ठाहीअ (अकार्षीत् , अकरोत् , चकार; तथा अस्थात् , अतिष्ठत् , तस्थौ)

विशेष—प्राकृतप्रकाश में ही और सी का विधान नहीं देखा जाता। उसके अनुसार एकाच धातु से केवल 'हीअ' आदेश होता है। देखिए—वर० ७. २४

(८) व्यञ्जनान्त धातु से भूतकाल में विहित सभी प्रत्ययों के स्थान में 'इअ' आदेश होता है। जैसे :—गण्हीअ (अग्रहीत् , अगृह्णात् , जग्राह)

विशेष—(क) केवल अस धातु के साथ भूतार्थक कुल पुरुष और वचन के प्रत्ययों के स्थान में 'आसि' और 'अहेसि' आदेश होते हैं। जैसे :—सो, तुमे अहं वा आसि। एवं अहेसि। देखिए—तेनास्तेरास्यहासी। हेम० ३. ६४

(ख) प्राकृतप्रकाश के अनुसार, अस धातु का, केवल भूतार्थक एकवचन के साथ एकमात्र 'आसि' आदेश होता है। देखिए वर. ७. २५

भविष्यत् काल में तिवादि तिङ् प्रत्ययों के स्वरूप :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	हिइ	हिन्ति, हिन्ते, हिरे
मध्यम पु०	हिसि	हित्थ, हिरु
उत्तम पु०	हिमि, हामि, स्सामि, स्सम्	हिस्सा, हिहा

---

१. देखिए—सी-ही-हीअ भूतार्थस्य। हेम० ३. १६२.

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पु०	सोच्छिसि, सोच्छिहिसि	सोच्छित्था इत्यादि
उत्तम पु०	सोच्छं	सोच्छिमो, सोच्छिहिमो इत्यादि

विध्याद्यर्थक तिङ् :—

प्रथम पु०	उ	न्तु
मध्यम पु०	सु, हि	ह
उत्तम पु०	मु	मो

हस धातु के विध्याद्यर्थ में रूप :—

प्रथम पु०	हसउ	हसन्तु, हसेन्तु
मध्यम पु०	हससु, हसहि, हस, हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे	हसह
उत्तम पु०	हसमु	हसामो

इसी प्रकार पठ आदि धातुओं के रूप जाने जा सकते हैं। किन्हीं आचार्यों के मत से विध्यादि में वर्तमान के तुल्य ही रूप होते हैं। जैसे :—जअइ[1] इत्यादि।

(१०) वर्तमान, भविष्यत् और विध्यादि में उत्पन्न प्रत्यय के स्थान में ज्ज और ज्जा ये दोनों आदेश विकल्प से होते हैं। पक्ष में यथाप्राप्त होते हैं। जैसे :—हसेज्ज, हसेज्जा (हसति, हसिष्यति, हसतु, हसेत् इत्यादि)

विशेष—(क) हेमचन्द्र के मत से स्वरान्त धातुओं के विषय में ही उक्त नियम लागू होता है।

(ख) शौरसेनी में उक्त नियम लागू नहीं होता।

1. शौरसेनी में जि धातु के विध्यादि में 'जेदु' इत्यादि रूप होते हैं।

(११) धातु से वर्तमान, भविष्यत् और विध्यादि अर्थवाले तिङ् यदि पर हों तो धातु और प्रत्यय के मध्य में भी ज्ज और ज्जा विकल्प से होते हैं। होज्जइ, होज्जाइ (भवति, भविष्यति, भवतु, भूयात् इत्यादि)

(१२) शतृ और शानच् इन दोनों में एक-एक के स्थान में न्त और माण ये दो आदेश होते हैं। जैसे :—पढन्तो, पढमाणो; हसन्तो, हसमाणो (पठन्, हसन्)

(१३) स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शतृ और शानच् के स्थान में ई, न्ती और माणा आदेश होते हैं। जैसे :—**उवहसमाणिं सरोरुहं विहसन्तिं हसइं व कुमुइणिं** (उपहसन्तीं; विहसन्तीम्; हसन्तीमिव) कुमा. पा. ५. १०६

(१४) वर्तमान, विध्यादि और शतृ प्रत्ययों के पर में रहने पर अकार के स्थान में एकार विकल्प से होता है। जैसे :— हसेइ, हसइ; हसेउ, हसउ; हसेंतो, हसंतो (हसति, हसेत्, हसन्) कहीं पर नहीं भी होता है। जैसे :—जअइ। कहीं आत्व भी होता है। जैसे :—सुणाउ।

विशेष—शौरसेनी में धातु और तिङ् के मध्य में अधिकतर ए और आ होते हैं।

(१५) भाव और कर्म में विहित यक् के स्थान में 'इअ' और 'इज्ज' आदेश होते हैं। जैसे :—हसिअइ, हसिज्जइ (हस्यते)

विशेष—दृश और वच के भाव और कर्म में क्रमशः दीश और वुच्च रूप होते हैं। दीसइ (दृश्यते); वुच्चइ (उच्यते)

(१६ क्त्वा, तुम, तव्य और भविष्यत् काल में विहित प्रत्यय के पर में रहने पर धातु के अन्त्य अ के स्थान में 'ए'

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे:—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे:—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे:—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे:—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात् मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और विषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि भमरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

(१२) केवल अर्थ में 'णवर' अव्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—सद्दो चीरीण सुव्वए **णवर** (केवल झींगुरों का शब्द सुनाई पड़ता है।

(१३) आनन्तर्य अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—गाअइ किल तस्स मिसा **णवरि** वसन्तस्स गिम्हसिरी। (झींगुरों की ध्वनि के बहाने वसन्त के बाद आनेवाली ग्रीष्म-शोभा हर्ष से मानो गान कर रही है) कुमा० पा० ४. ७.

(१४) निवारण अर्थ में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग करना उत्तम है। जैसे :—पहिआ, **अलाहि** गन्तुं (पथिको, जाना व्यर्थ है अर्थात मत जाओ।)

(१५) नञ् के अर्थ में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—**अण** दइआण (कान्तारहित जनों का)। कुसलाइँ इह **णाइं** (यहाँ कुशल नहीं है)।

(१६) मा के अर्थ में 'माइं' इस अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे :—**माइं** इह एध (यहाँ मत आओ।)

(१७) 'हद्धी' यह अव्यय निर्वेद अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे :—**हद्धी,** इअ व्व चीरीहि उल्लविअं

(१८) भय, वारण और बिषाद अर्थों में वेव्वे का प्रयोग करना चाहिए। जैसे :—समुहोट्ठिअम्मि ममरे **वेव्वे** त्ति भणेइ मल्लिउच्चिणिरी। वारणखेअभएहिं भणिउं **वेव्वे** वयंसे त्ति (सम्मुखोत्थिते भ्रमरे वेव्वे इति भणति मल्लिकामुच्चेत्री। वारण-खेदभयैः भणित्वा वेव्वे 'वयस्ये' इति।)

रु	रुञ्ज, रुण्ट, रव
श्रु	हण, सुण
धु	धूव, धुण
भू	हो, हुव, हव, हु,[1] णिव्वड,[2] हू,[3] हुप्प[4]
कृ	कुण, कर, णिआर,[5] णिट्ठुह[6] संदाण,[7] वावम्फ,[8] णिव्वोल या णिव्वोल,[9] पयल्ल,[10] पइल्ल, णीलुच्छ[11] कम्म,[12] गुलल

---

१. विद्वर्जित प्रत्यय के आने पर भू के स्थान में हु आदेश विकल्प से होता है। हेम. ४. ६१.

२. पृथक् होना और स्पष्ट होना अर्थ में णिव्वड आदेश होता है। हेम. ४. ६२.

३. क्त प्रत्यय के पर में रहने पर हू आदेश होता है। हेम. ४. ६४.

४. प्रभु होना अर्थ में प्र उपसर्ग पूर्व में रहने पर भू के स्थान में हुप्प विकल्प से होता है। हेम. ४. ६३.

५. काणेक्षित अर्थ में। देखो—'काणेक्षिते णिआरः।' हेम. ४. ६६.

६. निष्टम्भ और अवष्टम्भ अर्थों में क्रमशः णिट्ठुह और संदाण आदेश होते हैं। देखो—'निष्टम्भावष्टम्भे······' हेम. ४. ६७.

७. श्रम अर्थ में। देखो—'श्रमे वावम्फः।' हेम. ४. ६८.

८. क्रोध से ओठ मलिन करने अर्थ में। देखो—'मन्युनौष्ठमालिन्ये···' हेम. ४. ६९.

९. शिथिल होना या लम्बा पड़ना अर्थ में। देखो-'शैथिल्यलम्बने···' हेम. ४. ७०.

१०. निष्पात और आच्छोटन में। हेम. ४. ७१.

११. क्षौरकर्म में। हेम. ४. ७२

१२. चाटुकरण में। हेम. ४. ७३.

स्मृ	कर, कूर (हेमचन्द्र के मत से झर और झूर), भर, भल, लढ, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुह, सर
वि + स्मृ	पम्हुस, विम्हर, वीसर
वि + आ + हृ	कोक्क, पोक्क, वाहर
मुच	छड्ड, अवहेड, मेल्ल, (हेमचन्द्र के मत से उसिक्क भी) रे अव, णिल्लुञ्छ, धंसाड, णिव्वल[1]
वञ्च	वेहव, वेलव, जूरव, उमच्छ
रच	रणह (हेम० के मत से उग्गह) अवह, विडविड्ड, उवहत्थ[2] सारव, समार और केलाय
सिच	सिञ्च, सिम्प। पक्ष में सेअ
प्रच्छ	पुच्छ
गर्ज	बुक्क, ढिक्क[3]
राज	रग्घ, छज्ज, सह, रीर, रेह, राय
प्र + सृ	पयल्ल, उवेल्ल, महमह[4]
नि + सृ	नीहर (हेम० के अनुसार णीहर), नील, धाड, वरहाड। पक्ष में नीसर
जागृ	जग्ग। पक्ष में जागर
वि + आ + पृ	आअड्ड। पक्ष में वावर

१. दुःखमोचन अर्थ में। देखो—'दुःखे णिव्वलः।' हेम० ४. ९२.

२. उवहत्थ से केलाय तक जितने आदेश हैं सम् और आङ् पूर्वक रच के स्थान में विकल्प से होते हैं। देखो हेम० ४. ९५.

३. वृषभ के गर्जन अर्थ में। देखो—'वृषे ढिक्कः।' हेम० ४. ९९.

४. गन्ध-प्रसार में।

सं + वृ०	साहर, साहट्ट । पक्ष में संवर
आ + दृ	सन्नाम । पक्ष में आदर
प्र + हृ	सार । पक्ष में पहर
अव + तॄ	ओह, ओरस । पक्ष में ओअर
शक	चय, तर, तीर, पार । पक्ष में सक्क
त्यज	चय
तॄ	तर
पारि (पॄ + णिच्)	पार
फक्क	थक्क । किसी के मत से छक्क
श्लाघ	सलह
खच	वेअड । पक्ष में खच
पच	सोल्ल, पउल अथवा पउल्ल । पक्ष में पअ
मस्ज	आउड्ड, णिउड्ड, वुड्ड, खुप्प
पुञ्ज	आरोल, वमाल । पक्ष में पुंज
लज्ज	जीह । पक्ष में लज्ज
उद् + विज	उव्विव
तिज	ओसुक्क
मृज	उग्घुस, लुञ्छ, पुञ्छ, पुंस, फुस, पुस, लुह, हुल, रोसाण
भञ्ज	वेमय, मुसुमूर, मूर, सूर, सूड, विर, पविरञ्ज, करञ्ज, नीरञ्ज
व्रज	वच्च
अनु + व्रज	पडिअग्ग, अणुवच्च
अर्ज्ज	विढव, अज्ज
युज	जुञ्ज, जुज्ज, जुप्प
भुज	भुञ्ज, जिम, जेम, कम्म, अण्ह, समाण, चड्ड
उप + भुज	कम्मव

घट	गढ। पक्ष में घड
सं + घट	संगल। पक्ष में संघड
स्फुट	फुट्ट, फुंड, मुर[1]
मण्ड	चिञ्च, चिञ्चिअ, चिञ्चिल्ल, रीड, टिविडिक्क
तुड	तोड, तुट्ट, खुट्ट, खुड, उक्खुड, उल्लुक्क, णिलुक्क, लुक्क, उल्लूर
घूर्ण	घुल, घोल, घुम्म, पहल्ल
नृत	नच्च
क्वथ	अट्ट, कढ
ग्रन्थ	गण्ठ
मन्थ	विरोल, घुसल
ह्लद और ह्लाद	अवअच्छ
नि + सद	णुमज्ज
छिद	दुहाव, णिच्छल्ल, णिज्झोड, णिव्वर, णिल्लूर, लूर. छिन्द
आ + छिद	ओअन्द, उद्दाल
विद	विज्ज
मृद	मल, मढ, परिहट्ट, खड्ड, चड्ड, मड्ड, पन्नाड अथवा परणाड
स्पन्द	चुलुचुलु, फन्द
निर् + पद	निव्वल, निप्पज्ज
वि, सं + वद	विअट्ट, विलोट्ट, फंस और पक्ष में विसंवय
शद	झड, पक्खोड
आ + क्रन्द	णीहर। पक्ष में अक्कन्द
खिद	जूर, विसूर। पक्ष में खिज्ज

१. हास से विकसने अर्थ में।

रुध	उत्थङ्घ या उत्तङ्घ । पक्ष में रुन्ध
नि + सिध	हक्क । पक्ष में निसेह
क्रुध	जूर । पक्ष में कुज्झ
जन	जा, जम्म
तन	तड, तड्ड, तड्डव, विरल्ल और तण
तृप्त	थिप्प
उप + सृप	अल्लिअ । पक्ष में उवसप्प
सं + तप	झंख । पक्ष में संतप्प
वि + आप	ओअग्ग । पक्ष में वाव
सं + आप	समाण । पक्ष में समाव
क्षिप	गलत्थ, अड्डक्ख, सोल्ल, पेल्ल, णोल्ल, छुह, हुल, परी, घत्त । पक्ष में खिव
उद् + क्षिप	गुलगुञ्छ, उत्थंघ, अल्लत्थ, उब्भुत्त, उस्सिक्क, हक्खुव । पक्ष में उक्खिव
आ + क्षिप	णीरव । पक्ष में अक्खिव
स्वप	कमवस, लिस, लोट्ट । पक्ष में सुअ
वेप	आयम्ब, आयज्झ । पक्ष में वेव
वि + लप	झंख, वडवड । पक्ष में विलव
लिप	लिम्प
गुप	विर, णड । पक्ष में गुप्प
कृप	अवहाव[1]
प्र + दीप	तेअव, सन्दुम, सन्धुक्क, अब्भुत्त और पक्ष में पलीव
लुभ	संभाव । पक्ष में लुब्भ
क्षुभ	खउर, पड्डुह । पक्ष में खुब्भ

1. अवहावेइ = कृपां करोतीत्यर्थः । हेम० ४. १५१.

आ + रभ	आरंभ, आढव । पक्ष में आरभ
उप, आ + लंभ	झंख, पच्चार, वेलव । पक्ष में उवालम्भ
जृम्भ	जम्भा[1]
नम	णिसुढ[2] । पक्ष में णव
वि + श्रम	णिव्वा । पक्ष में वीसम
आ + क्रम	ओहाव, उत्थार, छुन्द । पक्ष में अक्कम
भ्रम	टिरिटिल्ल, ढुण्ढुल्ल, ढण्ढल्ल, चक्कम्म, भम्मड, भमड, भमाड, तलअण्ट, झण्ट, झम्प, भुम, गुम, फुम, फुस, ढुम, ढुस, परी, पर, भम
गम	अई, अइच्छ, अणुवज्ज, अवज्जस, उक्कुस, अक्कुस, पच्चड्ड, पच्छन्द, णिम्मह, णी, णीण, णीलुक्क, पदअ रंभ, परिअल्ल, वोल, परिअल, णिरिणास, णिवह, अवसेह, अवहर, गच्छ, अहिपच्चुअ,[3] अब्भिड,[4] संगच्छ, उम्मत्थ,[5] अब्भागच्छ, पलोट्ट,[6] पच्चागच्छ
शम	पडिसा, परिसाम । पक्ष में सम
रम	संखुड्ड, खेड्ड, उब्भाव, किलिकिञ्च, कोट्टुम, मोट्टाय, णीसर, वेल्ल और पक्ष में रम

---

१. वि पूर्व में रहने पर उक्त आदेश नहीं होते हैं । देखो—'अवेर्जृम्भो जम्भा ।' हेम० ४. १५७ में अवेरिति किम्? केलिपसरो विअम्भइ ।

२. भाराक्रान्त कर्ता में ।

३. आङ् पूर्वक गम का उक्त आदेश होता है ।

४. सम् पूर्वक गम का उक्त आदेश होता है ।

५. अभि और आङ् पूर्वक गम का उक्त आदेश होता है ।

६. प्रति और आङ् पूर्वक गम का उक्त आदेश होता है ।

पूर	अग्घाड, अग्घव, उद्घुम, अङ्गुम, अहिरेम पक्ष में पूर
त्वर	तुअर, जअड, तूर,[1] तुर[2]
क्षर	खिर, झर, पज्झर, पच्चड, णिच्चल, णिट्टुअ
चल	चल्ल, चल
उच्छल	उत्थल
वि + गल	थिप्प, णिट्टुह
दल	विसट्ट, दल
वल	वम्फ, वल
मील	मिल्ल, मील
भ्रंश	फिड, फिट्ट, फुड, फुट्ट, चुक्क, भुल्ल पक्ष में भस
नश	णिरणास, णिवह, अवसेह, पडिसा, सेह, अवहर। पक्ष में नस्स
अव + काश	ओआस
सं + दिश	अप्पाह
दृश	निअच्छ, पेच्छ, अवयच्छ, अवयज्झ, वज्ज, सव्वव, देक्ख, ओअक्ख, अवअक्ख, पुलोअ, निअ, अवआस
स्पृश	फास, फंस, फरिस, छिव, छिह, आलुङ्ख, आलिह
प्र + विश	रिअ। पक्ष में पविस
प्र + मृष	पम्हुस

१. त्यादि और शतृप्रत्ययों के पर में रहने पर तूर होता है। जैसे :—तूरई, तूरन्तो।

२. त्यादि से भिन्न में तुर होता है। जैसे तुरिओ, तुरन्तो।

प्र + मुष	पम्हुस
पिष	णिवह, णिरिणास, णिरिणज्ज, रोञ्च, चड्डु, पीस
भष	भुक्क, भस
कृष	कड्ढ, साअड्ढ, अञ्च, अणच्छ, आयञ्छ, आइञ्छ, करिस, अक्खोड[1]
गवेष	ढुण्ढुल्ल, ढण्ढोल, गमेस, घत्त, गवेस
श्लिष	सामग्ग, अवयास, परिअंत। पक्ष में सिलेस
म्रक्ष	चोप्पड, मक्ख
काङ्क्ष	आह, अहिलङ्घ, अहिलङ्ख, वच्च, वम्फ, मह, सिह, विलुम्प
प्रति + ईक्ष	सामय, विहीर, विरमाल। पक्ष में पडिक्ख
तक्ष	तच्छ, चच्छ, रम्प, रम्फ, तक्ख
वि + कस	कोआस, वोसट्ट, विअस
हस	गुञ्ज, हस
स्रंस	ल्हस, डिम्भ, संस
त्रस	डर, बोज्ज, वज्ज
नि + अस	णिम, णुम
परि + अस	पलोट्ट, पल्लट्ट, पल्हत्थ
निर् + श्वस	झंख, नीसस
उद् + लस	ऊसल, ऊसुम्म, णिल्लस, पुलआअ, गुञ्जोल्ल, आरोअ, उल्लस
भास	भिस, भास
ग्रस	घिस, गस
अव + गाह	ओवाह (उगाह), ओगाह (उगाह)

१. म्यान से तलवार खींचने अर्थ में।

पूर	अग्घाड, अग्घव, उद्घुम, अङ्कुम, अहिरेम पक्ष में पूर
त्वर	तुअर, जअड, तूर,[1] तुर[2]
क्षर	खिर, झर, पज्झर, पच्चड, णिच्चल, णिट्टुअ
चल	चल्ल, चल
उच्छल	उत्थल
वि + गल	थिप्प, णिट्टुह
दल	विसट्ट, दल
वल	वम्फ, वल
मील	मिल्ल, मील
भ्रंश	फिड, फिट्ट, फुड, फुट्ट, चुक्क, भुल्ल पक्ष में भस
नश	णिरणास, णिवह, अवसेह, पडिसा, सेह, अवहर। पक्ष में नस्स
अव + काश	ओआस
सं + दिश	अप्पाह
दृश	निअच्छ, पेच्छ, अवयच्छ, अवयज्झ, वज्ज, सव्वव, देक्ख, ओअक्ख, अवअक्ख, पुलोअ, निअ, अवआस
स्पृश	फास, फंस, फरिस, छिव, छिह, आलुङ्ख, आलिह
प्र + विश	रिअ। पक्ष में पविस
प्र + मृष	पम्हुस

---

१. त्यादि और शतृप्रत्ययों के पर में रहने पर तूर होता है। जैसे :—तूरई, तूरन्तो।

२. त्यादि से भिन्न में तुर होता है। जैसे तुरिओ, तुरन्तो।

(३७) सृज धातु के अन्त्य वर्ण का 'र' आदेश होता है। जैसे :—सिरइ (सृजति)

(३८) शक आदि धातुओं के अन्त्य अक्षर का द्वित्व होता है। जैसे :—सक्क, लग्ग, कुप्प, नस्स इत्यादि।

(३९) क्त प्रत्यय के सहित तत्तद् सोपसर्ग अथवा निरुपसर्ग धातुओं के स्थान में नीचे लिखे अफुण्ण आदि आदेश होते हैं :—

संस्कृत	प्राकृत
आक्रान्तः	अफुण्णो
उत्कृष्टम्	उक्कोसं
स्पष्टम्	फुडं[1]
अतिक्रान्तः	वोलीणो
विकसितः	वीसट्टो (वोसट्टो)
रुग्णः	लुग्गो
नष्टः	विल्हक्को
प्रमृष्टः	पम्हट्टो
अर्जितम्	विढत्तं
स्पृष्टम्	छित्तं
त्यक्तम्	जढं
क्षिप्तम्	ह्यासिअं
आस्वादितम्	चक्खिअं
स्थापितम्	निमिअं इत्यादि

1. तुलना कीजिए—अवधी के 'फुरे कहत हइँ' से।

सप्तम अध्याय

[कुछ विशिष्ट पद]

प्राकृत के विशेष-विशेष पदों की सिद्धि के लिए विभिन्न प्राकृत व्याकरणों में विशेष-विशेष नियम दिये गये हैं। हम यहाँ उनके विशेष रूप बतला रहे हैं। पादटिप्पणी में विशेष सूत्रों का भी यथासम्भव उल्लेख किया जा रहा है।

प्राकृत	संस्कृत
अगणी, अग्गी[1]	अग्निः
अंकोल्लो[2]	अङ्कोठः
अङ्गारो[3]	अङ्गारः
अच्छेरं, अच्छरिअं अच्छरिअं, अच्छअरं अच्छरिज्जं, अच्छरीअं [4]	आश्चर्यम्
अलचपुरं[5]	अचलपुरम्
अलसी[6]	अतसी

१. स्नेहाग्न्योर्वा। हेम० २. १०२.

२. अङ्कोठे ल्लः। हेम० १. २००.

३. पक्वाङ्गारललाटे वा। हेम० १. ४७. से इ के अभाव पक्ष में।

४. वल्ल्युत्करपर्यन्ताश्चर्ये वा। हेम० १. ५८. आश्चर्ये। हेम० २.६६.
अतो रिआइ-रिज्ज-रीअं। हेम० २. ६७.

५. अचलपुरे चलोः। हेम० २. ११८.

६. अतसी-सातवाहने लः। हेम० १. २११.

अणिउँत्तयं, अणिउंतयं[1]	अतिमुक्तकम्
अन्तेउरं[2]	अन्तःपुरम्
अन्तेआरी[3]	अन्तश्चारी
अन्नन्नं, अन्नुन्नं[4]	अन्योन्यम्
अप्पा, अत्ता[5]	आत्मा
अम्बं[6]	आम्रम्
अज्जो[7]	आर्यः
अहिमज्जू, अहिमञ्जू, अहिमन्नू[8]	अभिमन्युः
अड्ढं, अद्धं[9]	अर्द्धम्
अणं[10]	ऋणम्
अरुहो, अरहो, अरिहो[11]	अर्हः
अरुहंतो, अरहंतो, अरिहंतो[12]	
अलाऊ, अलाउं[13]	अलाबुः

१. 'यमुनाचामुण्डा............' हेम० १. १७८. क्वचिन्न भवति। अइमुंतयं, अइमुत्तयं।

२-३. तोऽन्तरि। हेम० १. ६०.

४. 'ओतोऽद्वान्योन्य.......' हेम० १. १५६.

५. आत्मनि पः। वर० ३. ४८.

६. ताम्राम्रे म्बः। हेम० २. ५६.। ह्रस्वः संयोगे। हेम० १. ८४.

७. द्य-य्य-र्यां जः। हेम० २. २४.। ह्रस्वः संयोगे। हेम० १. ८४

८. अभिमन्यौ जञ्जौ वा। हेम० २. २५.

९. श्रद्धर्द्धिमूर्द्धार्धेन्ते वा। हेम० २. ४१.

१०. ऋतोऽत्। हेम० १. १२६. ११. उच्चार्हति। हेम० २. १११.

१२. उच्चार्हति। हेम० २. १११.

१३. वालाब्वरण्ये लुक्। हेम० १. ६६.

अडो, अवडो[1]	अवटः
अवहडं[2]	अवहृतम्
अट्ठरह[3]	अष्टादश
अट्ठी[4]	अस्थि
अल्लं, अद्दं[5]	आर्द्रम्
आफंसो[6]	अस्पर्शः
आओ, आअओ[7]	आगतः
आइरिओ, आअरिओ[8]	आचार्यः
आओज्जं[9]	आतोद्यम्
आढिओ[10]	आहृतः
आमेलो[11]	आपीडः
आढत्तो, आरद्धो[12]	आरब्धः
आणालं[13]	आलानम्

१. यावत्तावज्जीवितावर्तमानावटप्रावारकदेवकुलैवमेवे वः । हेम० १.२२१

२. आर्ष प्रयोग है ।

३. ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे । हेम० २. ३४ । संख्यागद्गदे रः । हे० १. २१९

४. ठोऽस्थिविसंस्थुले । हे० २. ३२. ५. उदोद्वार्द्रे । हेम० १. ८२.

६. 'स्पृशः फासफंस.......' हे० ४. १८२.

७. व्याकरणप्राकारागते कगोः । हेम० १. २६८.

८. आचार्ये चोऽच्च । हेम० १. ७३.

९. द्य य्य-र्यां जः । हेम० २. २४. १०. आदृते ढिः । हेम० १. १४३.

११. एत्पीयूषापीडविभीतककीदृशे दृशे । हेम० १. १०५. आपेलो, आवेडो ये दो रूप भी देखे जाते हैं। देखो—नीपापीडे मो वा । हेम० १. २३४ आमेलो, आमेडो ।

१२. 'मलिनोभयशुक्तिछुप्तारब्ध....' हेम० १. १३८,

१३. आलाने लनोः । हेम० २. ११७.

आली[1]	आली
आत्तमाणो, आवत्तमाणो[2]	आवर्तमानः
आसीसय (आसीसा)[3]	आशीः
आलिट्ठं, आलिद्धं[4]	आश्लिष्टम्
इङ्गालो[5]	अङ्गारः
इङ्गुअं[6]	इङ्गुदम्
ईसि[7]	ईषत्
इआणीं	इदानीम्
इत्तिअं[8]	एतावत्
इड्ढी[9]	ऋद्धिः
इक्खू[10]	इक्षुः
उच्चअं[11]	उच्चैस्
उक्करो, उक्केरो[12]	उत्करः

१. ओदाल्यां पङ्क्तौ । हेम० १. ८३ के अभाव में ।

२. 'तस्य धूर्तादौ । हेम० २. ३० । 'यावत्तावज्जीविताववर्तमान'...' हेम० १. २७१.

३. गोणादयः । हेम० २. १७४

४. आश्लिष्टे लधौ । हेम० २. ४९.

५. पक्वाङ्गारललाटे वा । हेम० १. ४७.

६. शिथिलेऽङ्गुदे वा । हेम० १. ८९.

७. गौणस्य'...' हेम० २. १२९. के अभाव पक्ष में ईसि होता है ।

८. यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च । हेम० २. १५६.

९. इत्कृपादौ । हे० १. १२८.

१०. प्रवासीक्षौ । हे० १. ९५ के अभाव में ।

११. उच्चैर्नीचैस्यैअः । हेम० १. १५४.

१२. 'वल्ल्युत्कर'...' हेम० १. ५८.

उच्छवो[१]	उत्सवः
उत्थारो, उच्छाहो[२]	उत्साहः
ऊसुओ, उच्छुओ[३]	उत्सुकः
उम्बरो, उडम्बरो[४]	उदुम्बरः
उलूखलं, ओक्खलं[५]	उलूखलम्
उव्वीढं, उव्वूढं[६]	उद्व्यूढम्
उवरिं[७]	उपरि
उब्भं, उद्धं[८]	ऊर्ध्वम्
उसहो[९]	ऋषभः, वृषभः
उज्जू[१०]	ऋजुः
उऊ, उदू[११]	ऋतुः
उल्लं[१२]	आर्द्रम्
उल्लेइ[१३]	आर्द्रयति
ऊसारो[१४]	आसारः

१. सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा । हेम० २. २२

२. वोत्साहे थो हश्च रः । हेम० २. ४८.

३. सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा । हेम० २. २२.

४. 'दुर्गादेव्युदुम्बर....' हेम० १. २७०.

५. 'न वा मयूख....' हेम० १. १७१. ६. ईर्वोद्व्यूढे । हेम० १. १२०

७. वोपरौ । हेम० १. १०८. अवरिं भी होता है । पकाव ।

८. वोर्द्ध्वे । हेम० २. ५९.

९. उदृत्वादौ । हेम० १. १३१. । वृषभे वा । हेम० १. १३३.

१०-११. उदृत्वादौ । हेम० १. १३१ । रि का अभाव । देखो हेम० १. १४१.

१२-१३. उदोद्वार्द्रे । हेम १. ८२.

१४, ऊद्वासारे । हेम० १. ७६.

उच्छू[1]	इक्षुः
ऊसवो[2]	उत्सवः
एक्कारो[3]	अयस्कारः
एह्निं, एत्ताहे[4]	इदानीम्
एरिसो[5]	ईदृशः
एआरह	एकादश
एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कईआ, एगआ[6]	एकदा
एरावणो[7]	ऐरावतः
ऐ[8]	अयि
ओल्लेइ[9]	आर्द्रयति
ओसढं, ओसहं,[10]	औषधम्
ओली[11]	आली (लिः)
कउहं, ककुधं[12]	ककुदम्
ककुहा[13]	ककुप्
कण्डुअणं[14]	कण्डूयनम्

---

१. प्रवासीक्षौ । हेम० १. ९५.

२. छ का अभाव । देखो–सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा । हेम० २. २२.

३. 'स्थविरविचकिलायस्कार...' हेम० १. १६६.

४. एह्निं एत्ताहे इदानीमः । हेम० २. १३४.

५. 'एत्पीयूष...' १. १०५.

६. वैलादः सि सिअं इआ । हेम० २. १६२.

७. ऐतः एत् । हेम० १. १४८. ८. अयौ वैत् । हेम० १. १६९.

९. उदोद्वार्द्रे । हेम० १. ८२. १०. वौषधे । हेम० १. २२७.

११. ओदाल्यां पंक्तौ । हेम० १. ८३. १२. ककुदे हः । हे० १. २२५.

१३. ककुभो हः । हेम० १. २१. । 'कउहा' भी देखा जाता है ।

१४. उर्भूहनूमत्कण्डूयवातूले । हेम० १. १२१.

किसं, कसं[1]		कृशम्
कसिणो, कसणो (रंग में)	[2]	कृष्णः
कण्हो (वासुदेव में)		
कसिणं (णो)[3]		कृत्स्नम्
किसरं, केसरं[4]		केसरम्
केढवो[5]		कैटभः
कुच्छेअअं, कौच्छेअअं[6]		कौक्षेयकम्
कन्दो[7]		स्कन्दः
खन्दो[8]		स्कन्दः
खणो (समय में)[9]		क्षणः
खप्परं[10]		कर्परम्
खमा[11]		क्षमा, क्ष्मा
खंभो[12]		स्तम्भः
खित्तं[13]		क्षिप्तम्

---

१. इत्कृपादौ । हेम० १२८. तथा ऋतोऽत् । हेम० १. १२६.
२. कृष्णे वर्णे वा । हेम० २. ११०. ३. 'र्हश्रीह्री...' हेम० २. १०४.
४. 'एत इद्वा वेदना...' हेम० १. १४६.
५. कैटभे भो वः । हेम० १. २४०. ऐतः एत् । हेम० १. १४८.
'सटाशकटकैटभे...' १. १९६.
६. कौक्षेयके वा । हेम० १६१. ७. शुष्कस्कन्दे वा । हेम० २. ५.
८. ष्कस्कयोर्नाम्नि । हेम० २. ४. पक्ष में 'कन्दो' होगा ।
९. 'क्षः खः...' हेम० २. ३. १०. 'कुब्जकर्पर...' हेम० १. १८१.
११. क्षमायां कौ । हेम० २. १८.
१२. स्तम्भे स्तो वा । हेम० २. ८. पक्ष में थम्भो होगा ।
१३. क्ष=ख । देखो—हेम० २. ३.

खाणू[1]	स्थाणुः
खासिओ, खइओ[2]	खचितः
खुडिओ, खण्डिओ[3]	खण्डितम्
खल्लीडो[4]	खल्वाटः
खासिअं[5]	कासितम्
खीलओ[6]	कीलकः
खुज्जो[7]	कुब्जः
खेडओ[8]	क्ष्वेटकः
खेडिओ[9]	स्फेटिकः
गेंदुअं[10]	कन्दुकः
गग्गरं[11]	गद्गदम्
गड्डो[12]	गर्तः
गड्डहो, गद्दहो[13]	गर्दभः
गब्भिणं[14]	गर्भितम्

---

१. स्थाणावहरे । हेम० २. ७. २. 'खचित...' हेम० १. १९३.

३. 'चन्द्रखण्डिते...' हेम० १. ५३.

४. ईः स्त्यानखल्वाटे । हेम० १. १७४.

५. 'कुब्जकर्परकीले...' हेम० १. १८१. में देखो—आर्षेऽन्यत्रापि खासिअं ।

६, ७. 'कुब्जकर्परकीले...' हेम० १. १८१.

८, ९. क्ष्वेटकादौ । हेम० २. ६.

१०. एच्छय्यादौ । हेम० १. ५७ तथा 'मरकतमदकले...' हेम० १. १८२.

११. संख्यागद्गदे रः । हेम० १. २१९.

१२. गर्ते डः । हेम० २. ३५. १३. गर्दभे वा । हेम० २. ३७.

१४. गर्भितातिमुक्तके णः । हेम० १. २०८.

गउओ[1]	गवयः
गंभिरीअं	गाम्भीर्यम्
गेझं[2]	ग्राह्यम्
गलोई[3]	गुडूची
गहवई[4]	गृहपतिः
गोला, गोआवरी[5]	गोदा, गोदावरी
गोणो, गउओ, गावो, गउआ, गावीओ, गावी [6]	गौः (पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में)
गारवं, गउरवं[7]	गौरवम्
घरं[8]	गृहम्
चविलो, चविडो[9]	चपेटः
चविडा, चवेडा[10]	चपेटा
चंदिमा[11]	चन्द्रिका
चाउंडा[12]	चामुण्डा

---

१. गवये वः । हेम० १. ५४.

२. एद् ग्राह्ये । हेम० १. ७८. ३. 'ओत्कुष्माण्डी...' हेम० १. १२४.

४. गृहस्य घरोऽपतौ । हेम० २. १४४. में देखो—अपतौ पर्युदास ।

५. गोला, गोआवरी इति तु गोदागोदावरीभ्यां सिद्धम् । देखो—गोणादयः । हेम० २. १७४.

६. गव्यउ आअः । हेम० १. १५८. तथा गोणादयः । हेम० २. १७४.

७. आच्च गौरवे । हेम० १. १६३.

८. गृहस्य घरोऽपतौ । हेम० २. १४४. पा० घरो ।

९, १०. चपेटापाटौ वा । हेम० १. १९८ तथा 'एत इद्वा वेदना चपेटा...' हेम० १. १४६.

११. चन्द्रिकायां मः । हेम० १. १८५.

१२. 'यमुनाचामुण्डा...' हेम० १. १७८.

चइत्तं[१]	चैत्यम्
चोरिअं[२]	चौर्यम्
चोग्गुणो, चउग्गुणो[३]	चतुर्गुणः
चोट्ठो (त्थो), चउट्ठो (त्थो)[४]	चतुर्थः
चोट्ठी (त्थी), चउट्ठी (त्थी)[५]	चतुर्थी
चोद्दह, चउद्दह[६]	चतुर्दश
चोद्दसी, चउद्दसी[७]	चतुर्दशी
चोव्वारं, चउव्वारं[८]	चतुर्वारम्
चच्चरं[९]	चत्वरम्
चिहुरं[१०]	चिकुरः
चुच्छं[११]	तुच्छम्
चिलाओ[१२]	किरातः
चिन्धं, चिह्नं[१३]	चिह्नम्
छणो (उत्सव में)[१४]	क्षणः

---

१. त्योऽचैत्ये । हेम० २. १३. के अभाव में ।

२. 'स्याद्भव्य....' हेम० २, १०७.

३. 'न वा मयूख....' हेम० १. १७१.

४, ५. 'न वा मयूख....' हेम० १. १७१. तथा स्त्यानचतुर्थार्थे वा । हेम० २. ३३.

६, ७, ८. 'न वा मयूख....' हेम० १. १७१.

९. कृत्तिचत्वरे चः । हेम० २. १२.

१०. निकषस्फटिकचिकुरे हः । हेम० १. १८६.

११. तुच्छे तश्चछौ । हेम० १. २०४.

१२. किराते चः । हेम० १. १८३ तथा हरिद्रादौ लः । हेम० १, २५४.

१३. चिह्ने न्धो वा । हेम० २. ५०. १४. क्षण उत्सवे । हेम० २. २०.

छमा (पृथिवी में)[१]	क्षमा, क्ष्मा
छूढं[२]	क्षिप्तम्
छीअं[३]	क्षुतम्
छुहा[४]	क्षुधा
छुत्तं, छिक्कं[५]	क्षुतम्
छालो (ली)[६]	छागः (गी)
छाहा (अनातप में) }[७]	छाया
छाआ (कान्ति में)	
छउमं, छम्मं[८]	छद्म
छड्डिओ[९]	छर्दिकः
छुच्छं[१०]	तुच्छम्
छमी[११]	शमी
छंमुहो[१२]	षण्मुखः
छट्ठो[१३]	षष्ठः
छट्ठी[१४]	षष्ठी

१. क्षमायां कौ। हेम० २. १८. २. 'वृक्षक्षिप्तयो...' हेम० २. १२७.
३. ईः क्षुते। हेम० १. ११२.
४, ५. छोऽक्ष्यादौ। हेम० २. १७. तथा क्षुधो हा। हेम० १. १७.
६. छागे लः। हेम० १. १९१
७. छायायां होऽकान्तौ वा। हेम० १. २४९
८. पद्मछद्ममूर्खद्वारे वा। हेम० २. ११२.
९. 'संमर्द...' हेम० २. ३६. १०. तुच्छे तश्चछौ। हेम० १. २०४.
११. 'षट्शमी...' हेम० १. २६५.
१२. 'ङ्ञणनो...' हेम० १. २५. तथा हेम० १. २६५.
१३, १४. 'षट्शमीशाव...' हेम० १. २६५.

छत्तिवण्णो, छत्तवण्णो[1]	सप्तपर्णः
छिरा[2]	शिरा
छुहा[3]	सुधा
छिहा[4]	स्पृहा
जडिलो[5]	जटिलः
जम्मणं, जम्मो[6]	जन्म
जिब्भा, जीहा[7]	जिह्वा
जुण्णं, जिण्णं[8]	जीर्णम्
जीअं[9]	जीवितम्
जीविअं[10]	जीवितम्
जीआ[11]	ज्या
जह, जहा[12]	यथा
जउंणा[13]	यमुना

१. सप्तवर्णे वा। हेम० १. ४९. तथा हेम० १. २६५.
२, शिरायां वा। हेम० १. २६६. पक्ष में 'सिरा'।
३. षट्शमीशावसुधासप्तपर्णेष्वादेश्छः। हेम० १. २६५.
४. स्पृहायाम्। हेम० २. २३.
५. जटिले जो झो वा। हेम० १. १९४.
६. न्मो मः। हेम० २. ६१. तथा 'अन्त्य'...' हेम० १. ११.
७. 'ईर्जिह्वा....' हेम० १. ९२. तथा ह्वो भो वा। हेम० २. ५७.
८. उर्जीर्णे। हेम० १. १०२. जुण्णसुरा। जिण्णे भोअण-मत्ते
९, १०. 'यावत्तावज्जीविता....' हेम० १. २७१.
११. ज्यायामीत्। हेम० २. ११५.
१२. 'वाव्ययोत्खाता....' हेम० १. ६७.
१३. 'यमुनाचामुंडा....' हेम० १. १७८.

जा, जाव, जित्तिअं[1]	यावत्
जहुट्ठिलो, जहिट्ठिलो[2]	युधिष्ठिरः
झडिलो[3]	जटिलः
झओ[4]	ध्वजः
झुणि[5]	ध्वनिः
टगरं[6]	तगरम्
टसरो[7]	त्रसरः
ठंभो[8]	स्तम्भः
ठीणं[9]	स्त्यानम्
ठड्ढो[10]	स्तब्धः
डोलो[11]	दोलः
डोहलो[12]	दोहदः
डाहो[13]	दाहः

---

१. 'यावत्तावज्जीवितावर्तमाना....' हेम० १. २७१. तथा हेम० १.११

२. युधिष्ठिरे वा। हेम० १. ९६. तथा उतो मुकुलादिष्वत्। हेम० १. १०७.

३. जटिले जो झो वा। हेम० १. १९४.

४. त्वथ्वद्वध्वां चछजझाः क्वचित्। हेम० २. १५.

५. 'त्वथ्वद्वध्वां....' हेम० २. १५ तथा ध्वनिविष्वचो रुः। हेम० १. ५२.

६, ७. तगरत्रसरतूवरे टः। हेम० १. २०५.

८. थठावस्पन्दे। हेम० २. ९.

९. ईः स्त्यानखल्वाटे। हेम० १. ७४.

१०, ११. स्तब्धे ठढौ। हेम० २. ३९.

१२, १३. दशन-दष्ट-दग्ध-दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा डः। हेम० १. २१७.

डट्ठो[1]	दष्टः
डसनं[2]	दशनम्
डरो (भय में)[3]	दरः
डंभो[4]	दम्भः
डंडो[5]	दण्डः
डड्ढं (डढो)[6]	दग्धम्
णिवुत्तं, णिउत्तं, णिअत्तं[7]	निवृत्तम्
णिसीढो, णिसीहो[8]	निशीथः
णिच्चलो[9]	निश्चलः
णुमण्णो, णिसण्णो[10]	निषण्णः
णडालं, णिडालं, णलाडं[11]	ललाटम्
तविअं, तत्तं[12]	तप्तम्
तम्बं[13]	ताम्रम्
तम्बोलं[14]	ताम्बूलम्
ता, ताव, तित्तिअं[15]	तावत्

---

१. २. ३. ४. ५. ६. वही. ७. निवृत्तवृन्दारके वा । हेम० १.१३२.

८. निशीथपृथिव्योर्वा । हेम० १. २१६.

९. दुःखे णिच्चलः । हेम० ४. ९२ की पादटिप्पणी ५ देखो.

१०. उमो निषण्णे । हेम० १. १७४.

११. ललाटे लडोः । हेम० २. १२३ तथा पक्वाङ्गारललाटे वा । हेम० १. ४७.

१२. शर्षतप्तवज्रे वा । हेम० २. १०५.

१३. ह्रस्वः संयोगे । हेम० १. ८४. तथा ताम्राम्रे म्बः । हेम० २. ५६.

१४. 'ओत्कुष्माण्डी···' हेम० १. १२४.

१५. 'यावत्तावज्जीविता···' हे० १. २७१. तथा 'यत्तदेतदो···' हेम० २. १५६. एवं १. ११.

तित्तिरो[1]	तित्तिरिः
तिरिच्छी[2]	तिर्यक्
तिक्खं, तिण्हं[3]	तीक्ष्णम्
तेहं, तूहं, तित्थं[4]	तीर्थम्
तोणं, तूणं[5]	तूणम्
तोणीरं[6]	तूणीरम्
तूरं[7]	तूर्यम्
तेरह[8]	त्रयोदश
तेवीसा[9]	त्रयोविंशतिः
तेत्तीसा[10]	त्रयस्त्रिंशत्
तीसा[11]	त्रिंशत्
तेवण्णा[12]	त्रिपञ्चाशत्
तंबो[13]	स्तम्बः

१. तित्तिरौ रः। हेम० १. ९०. २. तिर्यचस्तिरिच्छः। हे० २. १४३.

३. 'सूक्ष्मश्न....' हेम० २.७५. तथा तीक्ष्णे णः। हेम० २. ८२.

४. तीर्थे हे। हे० १. १०४. ह्रस्वः संयोगे। हेम० १. ८४ तथा दुःख-दक्षिणतीर्थे वा। हेम० २. ७२.

५. स्थूणातूणे वा। हेम० १. १२५.

६. 'ओत्कुष्माण्डी....' हेम० १. १२४.

७. 'ब्रह्मचर्यतूर्य....' हेम० २. ६३.

८. 'एत्रयोदशादौ....' हेम० १. १६५. संख्यागद्गदे रः। हेम० १. २१९ तथा हेम० १. २६२.

९, १०. वही।

११. विंशत्यादेर्लुक्। हेम० १. २८. १२. गोणादयः। हेम० २. १७४.

१३. 'स्तस्य थो....' हेम० २. ४५ के असमस्तस्तम्बे इस पर्युदास से तंबो होता है।

तवो[1]	स्तवः
थेणो, थूणो[2]	स्तेनः
थंभो[3]	स्तम्भः
थवो[4]	स्तवः
थी[5]	स्त्री
थेरो[6]	स्थविरः
थीणं[7]	स्त्यानम्
थाणू[8]	स्थाणुः
थोणा, थूणा[9]	स्थूणा
थोरं, थूलं (थुल्लो)[10]	स्थूलम्
थेरिअं[11]	स्थैर्यम्
दुवरो[12]	तूवरः
दाढा[13]	दंष्ट्रा

---

१. स्तवे वा । हेम० २. ४६. से थ के अभाव में ।

२. उः स्तेने वा । हेम० १४७. ३. 'स्तस्य थो····' हेम० २. ४५.

४. स्तवे वा । हेम० २. ४६.

५. स्त्रिया इत्थी । हेम० २. १३०. से 'इत्थी' के अभाव में ।

६. स्थविरविचकिलायस्कारे । हेम० १. १६६.

७. स्त्यानचतुर्थार्थे वा । हेम० २. ३३. से ठ के अभाव में थीणं होता है । तथा ईः स्त्यान-खल्वाटे । हेम० १. ७४.

८. स्थाणावहरे । हेम० २. ७. से हर अर्थ में ख के अभाव में थाणु होता है । ९. स्थूणातूणे वा । हेम० १. १२५.

१०. थुल्लो, थोरो (थेरो A.) सेवादौ वा । हेम० २. ९९.

११. स्याद्भव्यचैत्यचौर्यसमेषु यात् । हेम० २. १०७.

१२. हेमचन्द्र के अनुसार दुवरो रूप नहीं होता है ।

१३. दंष्ट्राया दाढा । हेम० २. १३९.

दड्ढं[१]	दग्धम्
दंडो[२]	दण्डः
दिण्णं[३]	दत्तम्
दणुवहो, दणुअ-वहो[४]	दनुजवधः
दंभो[५]	दम्भः
दरो (अल्प में)[६]	दरः
दस, दह[७]	दश
दसणं[८]	दशनम्
दहमुहो, दसमुहो[९]	दशमुखः
दट्ठो[१०]	दष्टः
दाहिणो, दक्खिणो[११]	दक्षिणः
दाहो, दाघो[१२]	दाहः
दिवहो, दिवसो[१३]	दिवसः

---

१. 'दशनदष्टदग्ध....' हेम० १. २१७ से ड के अभाव में। २. वही।
३. इः स्वप्नादौ। हेम० १. ४६. तथा पञ्चाशत्पञ्चदशदत्ते। हेम० २. ४३. ४. लुग्भाजनदनुज....' हेम० १. २६७.
५. दशनदष्टदग्ध....' हेम० १. २१७, से ड के अभाव में।
६. वही। ७. दशपाषाणे हः। हेम० १. २६२.
८. दशनदष्टदग्ध....' हेम० १. २१७ से ड के अभाव में।
९. श का वैकल्पिक ह। देखो—दशपाषाणे हः। हेम० १. २६२.
१०. हेम० १. २१७. के अभाव में।
११. वैकल्पिक ह। दुःखदक्षिणतीर्थे वा। हेम० २. ७२. तथा दीर्घ—दक्षिणे हे। हेम० १. ४५.
१२. हो घोऽनुस्वारात्। क्वचिदननुस्वारादपि–दाघो। पक्षे दाहो। हेम० १. २६४.।
१३. स का वैकल्पिक ह। दिवसे सः। हेम० १. १६३.

दिग्घो, दीहो[1]	दीर्घः
दुहं, दुक्खं[2]	दुःखम्
दुअल्लं, दुऊलं, दुगुल्लं[3]	दुकूलम्
दुग्गावी, दुग्गा-एवी[4]	दुर्गादेवी
दूहवो, दुहओ[5]	दुर्भगः
दुक्कडं[6]	दुष्कृतम्
दुहिआ[7]	दुहिता
दरिओ[8]	दृप्तः
दिअरो, देअरो[9]	देवरः
देउलं, देवउलं[10]	देवकुलम्
देव्वं, दइव्वं, दइवं[11]	दैवम्
दोहलो[12]	दोहदः

१. हेम० २. ७६. तथा दीर्घे वा । हेम० २६१.

२. वैकल्पिक ह । दुःखदक्षिणतीर्थे वा । हेम० २. ७२.

३. ऊकार का वैकल्पिक अत्व और लकार का द्वित्व । देखो-दुकूले वा लश्च द्विः । हेम० १. ११६ । आर्ष प्राकृत में दुगुल्लं होता है ।

४. दुर्गादेव्युदुम्बरपादपतनपादपीठेऽन्तर्दः । हेम० १. २७०.

५. लुंकि दुरो वा । हेम० १. ११५. और ऊत्वे दुर्भगसुभगे वः । हेम० १. १९२.

६. प्रत्यादौ डः । आर्षे दुक्कडं । हेम० १. २०६.

७. 'दुहितृभगिन्योः···' हेम० २. १२६ इससे 'धूआ' आदेश के अभाव में ।

८. अरिर्दृप्ते । हेम० १. १४४.

९. एत इद्वा वेदनाचपेटादेवरकेसरे । हेम० १. १४६.

१०. 'यावत्तावत्···' हेम० १.२७१. ११. एच्च दैवे । हेम० १. १५३.

१२. प्रदीपिदोहदे लः । हेम० १. २२१.

दोला[१]	दोला
देरं, दुआरं, दारं, दुवार[२]	द्वारम्
दिही[३]	धृतिः
धूआ[४]	दुहिता
धणुहं, धणू[५]	धनुः
धत्ती, धाई, धारी[६]	धात्री
धिइ	धिक्
धिरत्थु[७]	धिगस्तु
धिई[८]	धृतिः
धिट्ठो, धट्ठो[९]	धृष्टः
धट्ठज्जणो[१०]	धृष्टद्युम्नः
धीरं, धिज्जं[११]	धैर्यम्
नत्तिओ, नत्तुओ[१२]	

१. 'दशनदष्टदग्धदोला···' हेम० १. २१७. से ड के अभाव में।

२. द्वारे वा। हेम० १. ७९. पद्मछद्ममूर्खद्वारे वा। हेम० २. ११२.

३. धृतेर्दिहिः। हेम० २. १३१.

४. धूआ, दुहिआ। 'दुहितृभगिन्योः···' हेम० २. १२६.

५, धनुषो वा। हेम० १. २२.

६. धात्र्याम। हे० २. ८१. ह्रस्व से पहले ही रलोप होने पर धाई और पक्ष में धारी ये रूप होते हैं।

७. गोणादयः। हेम० २. १७४.

८. धृतेर्दिहिः। हेम० २. १३१. इससे 'दिहि' के अभाव में।

९. मसृणमृगाङ्कमृत्युशृङ्गधृष्टे वा। हेम० १. १३०. तथा हेम० २. ३४.

१०. धृष्टद्युम्ने णः। हेम० २. ९४.

११, ईर्धैर्ये। हेम० १. १५५. तथा धैर्ये वा। हेम० २. ६४.

१२. 'इदुतौपृष्ठवृष्टि···' हेम० १. १३७.

नोहलिआ[1]	नवफलिका
निहसो[2]	निकषः
निम्बो[3]	निम्बः
निसढो[4]	निषधः
नेड्डं, नीडं[5]	नीडम्
नीमो, नीवो[6]	नीपः
नीमी, नीवी[7]	नीविः
नेरइओ[8]	नैरयिकः
नारइओ[9]	नारकिकः
नेउरं, निउरं, नूउरं[10]	नूपुरम्
नापिओ[11]	नापितः
निज्झरो[12]	निर्झरः

---

१. ओत्पूतर'''' हेम० १. १७०.

२. निकषस्फटिकचिकुरे हः । हेम० १. १८६.

३. निम्बनापिते लण्हं वा । हेम० १. २३०. इसके अभाव में ।

४. निषधे धो ढः । हेम० १. २२६.

५. नीडपीठे वा । हेम० १. १०६.

६. नीपापीडे मो वा । हेम० १. २३४.

७. स्वप्ननीव्योर्वा । हेम० १. २५९,

८. ९. कथं नेरइओ, नारइओ ? नैरयिक-नारकिकशब्दयोर्भविष्यति । देखो—द्वारे वा । हेम० १. ७९.

१०. इदेतौ नूपुरे वा । हेम० १. १२३.

११. निम्बनापिते लण्हं वा । हेम० १. २३० से ण्ह के अभाव में । तथा हेम० १. १७७.

१२. द्वितीयतुर्ययोरुपरि पूर्वः । हेम० २. ९०.

नमोक्कारो[1]	नमस्कारः
नीचअं[2]	नीचैः
नावा[3]	नौः
पक्कं, पिक्कं[4]	पक्कम्
पम्ह[5]	पद्म
पण्णरह[6]	पञ्चदश
पञ्चावण्णा, पण्णण्णा[7]	पञ्चपञ्चाशत्
पण्णासा[8]	पञ्चाशत्
पडाया[9]	पताका
पट्टणं[10]	पत्तनम्
पाइक्को, पाआई[11]	पदातिः
पोम्मं, पउमं, पम्मं[12]	पद्मम्
पहो[13]	पन्था

---

१. 'नमस्कार...' हेम० १. ६२.

२. उच्चैर्नीचैस्यै अः। हेम० १. १५४.

३. नाव्यावः। हेम० १. १६४.

४. पक्काङ्गारललाटे वा। हेम० १. ४७.

५. पद्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः। हेम० २. ७४.

६. पञ्चाशत्पञ्चदशदत्ते। हेम० २. ४३.

७. गोणादयः। हेम० २. १७४. ८. पञ्चाशत्पञ्चदशदत्ते। २. ४३.

९. प्रत्यादौ डः। हेम० १. २०६.

१०. 'वृत्तप्रवृत्त......' हेम० २. २९.

११. 'मलिनोभय शुक्ति......' हेम० २. १३८.

१२. ओत्पद्मे। हेम० १. ६१. 'पद्म-छद्म...' हेम० २. ११२.

१३. 'पथि पृथिवी...' हेम० १. ८८.

परोप्परं[1]	परस्परम्
पारक्कं, पारिक्कं, पारकेरं, पाराकेरं[2]	परकीयम्
पेरन्तो, पज्जन्तो[3]	पर्यन्तः
पल्लट्टं, पल्लत्थं[4]	पर्यस्तम्
पल्लाणं, पडायाणं[5]	पर्याणम्
पलिअं, पलिलं[6]	पलितम्
पल्लङ्को, पलिअंको[7]	पल्यङ्कः
पाअवडणं, पावडणं[8]	पादपतनम्
पावीडं, पाअवीडं[9]	पादपीठम्
पहिहो[10]	पान्थः (पथिकः)
पारद्धी[11]	पापर्द्धिः

१. 'नमस्कारपरस्परे…' हेम० १. ६२.

२. 'परराजभ्यां…' हेम० २. १४८.

३. एतः पर्यन्ते । हेम० २. ६५.

४. पर्यस्ते थटौ । हेम० २. ४७ तथा 'पर्यस्तपर्याण…' हेम० २. ६८.

५. पर्याणे डा वा । हेम० १. २५२. 'पर्यस्तपर्याण…' हेम० २. ६८

६. पलिते वा । हेम० १. २१२.

७. पल्लङ्को इति च पल्यङ्कशब्दस्य यलोपे द्वित्वे च । पलिअंको इत्यपि चौर्यसमत्वात् । देखो—पर्यस्तपर्याणसौकुमार्ये ल्लः । हेम० २.६८.

८. 'दुर्गादेव्युदुम्बरपादपतन…' हेम० १. २७०.

९, 'दुर्गादेव्युदुम्बरपादपतन…' हेम० १. २७०.

१०. पथोणस्येकट्–पहिओ । हेम० २. १५२.

११. पापर्द्धौ रः । हेम० १. २३५.

पूर	अग्घाड, अग्घव, उद्दुम, अङ्गुम, अहिरेम पक्ष में पूर
त्वर	तुअर, जअड, तूर,[1] तुर[2]
क्षर	खिर, झर, पज्झर, पच्चड, णिच्चल, णिट्टुअ
चल	चल्ल, चल
उच्छल	उत्थल
वि + गल	थिप्प, णिट्टुह
दल	विसट्ट, दल
वल	वम्फ, वल
मील	मिल्ल, मील
भ्रंश	फिड, फिट्ट, फुड, फुट्ट, चुक्क, भुल्ल पक्ष में भस
नश	णिरणास, णिवह, अवसेह, पडिसा, सेह, अवहर। पक्ष में नस्स
अव + काश	ओआस
सं + दिश	अप्पाह
दृश	निअच्छ, पेच्छ, अवयच्छ, अवयज्झ, वज्ज, सव्वव, देक्ख, ओअक्ख, अवअक्ख, पुलोअ, निअ, अवआस
स्पृश	फास, फंस, फरिस, छिव, छिह, आलुङ्ख, आलिह
प्र + विश	रिअ। पक्ष में पविस
प्र + मृष	पम्हुस

१. त्यादि और शतृप्रत्ययों के पर में रहने पर तूर होता है। जैसे :—तूरई, तूरन्तो।

२. त्यादि से भिन्न में तुर होता है। जैसे तुरिओ, तुरन्तो।

पोरो[1]	पूतरः
पुरिमं, पुव्वं[2]	पूर्वम्
पिधं, पिहं, पुधं, पुहं[3]	पृथक्
पुहई, पुढवी, पुहवी[4]	पृथिवी
पउरिसं[5]	पौरुषम्
पवट्ठो, पउट्ठो[6]	प्रकोष्ठः
पइण्णा[7]	प्रतिज्ञा
पइट्ठा[8]	प्रतिष्ठा
पडंसुआ[9]	प्रतिश्रुत्
पईवं[10]	प्रतीपम्
पच्चुहो, पच्चुसो[11]	प्रत्यूषः
पुढुमं, पढुमं, पढमं, पढमं[12]	प्रथमम्

१. वही। २. पूर्वस्य पुरिमः। हेम० २. १३५.

३. 'इदुतौवृष्टवृष्टि...' हेम० १. १३७. तथा पृथकि धो वा। हेम० १. १८८.

४. 'पथिपृथिवी...' हेम० १. ८८. तथा उद्दत्वादौ। हेम० १. १३१. एवं निशीथपृथिव्योर्वा। हेम० १. २१६.

५. अउः पौरादौ वा। हेम० १. १६२.

६. 'ओतोऽद्वान्योन्यप्रकोष्ठ...' १. १५६.

७. ८. प्रायः कथन से ड नहीं हुआ। देखो—प्रत्यादौ डः। हेम० १. २०६.

९. प्रत्ययादौ डः। हेम० १. २०६. 'पथिपृथिवी...' हेम० १. ८८. तथा वक्रादावन्तः। हेम० १. २६.

१०. प्रायः कथन से ड नहीं हुआ। देखो—प्रत्यादौ डः। हेम० १.२०६.

११. प्रत्यूषे षश्च हो वा। हेम० २. १४.

१२. प्रथमे पथोर्वा। हेम० १. ५५. तथा 'मेथिशिथिर...' हेम० १. २१५.

पावासू[1]	प्रवासी
पअट्टं, पउत्तं[2]	प्रवृत्तम्
पसढिलं, पसिढिलं[3]	प्रशिथिलम्
पारो, पाआरो[4]	प्राकारः
पाहुडं[5]	प्राभृतम्
पांगुरणं, पाउरणं, पावरणं[6]	प्रावरणम्
पावारओ, पारओ[7]	प्रावारकः
पलक्खो[8]	प्लक्षः
फणसो[9]	पनसः
फलिहा[10]	परिखा
फलिहो[11]	परिघः
फरुसो[12]	परुषः
फालिहद्दो[13]	पारिभद्रः

---

१. प्रवासीक्षौ । हेम० १. ९५. अतः समृद्धयादौ वा । हेम० १. ४४.

२. उद्त्वादौ । हेम० १. १३१. तथा 'वृत्तप्रवृत्त....' हेम० २. २९.

३. शिथिलेङ्गुदे वा । हेम० १. ८९.

४. 'व्याकरणप्राकारागते....' हेम० १. २६८.

५. उद्त्वादौ । हेम० १. १३१. तथा प्रत्यादौ डः । हेम० १. २०६.

६. प्रावरणे अङ्ग्वाऊ । हेम० १. १७५.

७. 'यावत्तावज्जीविता....' हेम० १. २७१.

८. प्लक्षे लात् । हेम० २. १०३. ९. 'पाटिपरुष....' हेम० १. २३२.

१०. वही तथा हरिद्रादौ लः । हेम० १. २५४. ११. वही ।

१२. 'पाटिपरुष....' हेम० १. २३२.

१३. वही तथा हरिद्रादौ लः । हेम० १. २५४.

फलिहं[1]	स्फटिकम्
भइणी[2]	भगिनी
भरहो[3]	भरतः
भविअं[4]	भव्यम्
भवन्तो[5]	भवान्
भस्सं, भप्पं[6]	भस्म
भामिणी[7]	भागिनी
भाअणं, भाणं[8]	भाजनम्
भारिआ[9] (पैशाची में)	भार्या
भिण्डिवालो[10]	भिन्दिपालः
भिप्फो[11]	भीष्मः
भेडो[12]	भेरः
भसरो, भसलो[13]	भ्रमरः
भिउडी[14]	भ्रुकुटिः

१. स्फटिके लः हेम० १. १९७. तथा 'निकषस्फटिक…' हेम० १. १८६. फलिहो भी देखा जाता है।

२. 'दुहितृभगिन्योः…' हेम० २. १२६. बहिणी के अभाव में.

३. 'वितस्तिवसतिभरत…' हेम० १. २१४.

४. 'स्याद्भव्य…' हेम० २. १०७. ५. गोणादयः। हेम० २. १७४.

६. भस्मात्मनोः पो वा। हेम० २. ५१.

७. पुन्नागभागिन्योर्गो मः। हेम० १. १९०.

८. 'लुग्भाजनदनुज…' हेम० १. २६७.

९. 'र्यस्नष्टां…' हेम० ४. ३१४.

१०. कन्दरिकाभिन्दीपाले ण्डः। हेम० २. ३८.

११. भीष्मे ष्मः। हेम० २. ५४. १२. किरिभेरे रो डः। हेम० १. २५१.

१३. भ्रमरे सो वा। हेम० १. २४४. १४. इर्भ्रुकुटौ। हेम० १. ११०.

भुलया[1]	भ्रूलता
भिब्भलो[2]	विह्वलः
भयप्फइ, भयस्सई[3]	बृहस्पतिः
मघोणो[4]	मघवान्
मअगलो[5]	मदकलः
मज्झिमो[6]	मध्यमः
मज्झह्णो, मझ्झह्णो[7]	मध्याह्नः
महुअं, महूअं[8]	मधूकम्
मणोहरं, मणहरं[9]	मनोहरम्
मन्नू (न्तू), मण्णू (न्तू)[10]	मन्युः
मोहो, मऊहो[11]	मयूखः
मोरो, मऊरो, मयुरो[12]	मयूरः

१. उर्भ्रूहनूमत्कण्डूयवातूले । हेम० १. १२१.

२. वा विह्वले वौ वश्च । हेम० २. ५८ पक्ष में विब्भलो, विहलो ।

३. बृहस्पतौ बहो भयः । हेम० २. १३७. तथा बृहस्पतिवनस्पत्योः सो वा २. ६९. ष्पस्पयोः फः । हेम० २. ५३.

४. गोणादयः । हेम० २. १७४.

५. मरकतमदकले गः । हेम १. १८२.

६. मध्यमकतमे द्वितीयस्य । हेम० १. ४८.

७. मध्याह्ने हः । हेम० २. ८४. तथा ह्रस्वः संयोगे । हेम० १. ८४.

८. मधूके वा । हेम० १. १२२.

९. 'ओतोद्वान्योन्य....' हेम० १. १५६.

१०. मन्यौ न्तो वा । हेम० २. ४४.

११. 'न वा मयूख....' हेम० १. १७१.

१२. मोरो मउरो इति तु मोरमयूरशब्दाभ्यां सिद्धम् । देखो—हेम० १. १७१.

मरगअं[1]	मरकतम्
मड्डिअं[2]	मर्दितम्
मइलं, मलिणं[3]	मलिनम्
मसिणं, मसणं[4]	मसृणम्
महन्तो[5]	महान्
मरहट्ठं[6]	महाराष्ट्रम्
मयन्दो[7]	माकन्दः
माउसिआ, माउच्छा[8]	मातृष्वसा
महुरिअं[9]	माधुर्यम्
मञ्जरो, मज्जारो[10]	मार्जारः
मेरा[11]	मिरा (मर्यादा अर्थ में)
मुक्कं, मुत्तं[12]	मुक्तम्
मूसलं, मुसलं[13]	मुसलम्

१. 'मरकतमदकले···' हेम० १. १८२.
२. 'संमर्दवितर्दि···' हेम० २. ३६.
३. 'मलिनोभयशुक्ति···' हेम० २. १३८.
४. 'मसृणमृगाङ्क···' हेम० १. ३०.
५. गोणादयः। हेम० १. १७४. (मत्तूण महन्ता तवस्सन्ति। कुमा० पा० ७. ५१)
६. महाराष्ट्रे। हेम० १. ६९. ७. गोणादयः। हेम० २. १७४.
८. मातृपितुः स्वसुः सिआ-छौ। सेम० २. १४२.
९. खघथधभाम्। हेम० १. १८७.
१०. मार्जारस्य मञ्जरवञ्जरौ। हेम० २. १३८.
११. मिरायाम्। हेम० १. ८७.
१२. 'शक्तमुक्तदष्ट···' हेम० २. २.
१३. उत्सुभगमुसले वा। हेम० १. ११३.

मुरुखो, मुक्खो[1]	मूर्खः
मुड्ढा, मुद्धा[2]	मूर्धा
मोल्लं[3]	मूल्यम्
मूसओ[4]	मूसिकः
मिअंको, मअंको[5]	मयङ्कः
मडअ[6]	मृतकम्
मट्टिआ[7]	मृत्तिका
मिच्चू, मच्चू[8]	मृत्युः
मिअंगो, मुइंगो[9]	मृदङ्गः
माउअं, मउअं, माउक्कं[10]	मृदुकम्
माउत्तणं, मउत्तणं, माउक्कं[11]	मृदुत्वम्
मुसा, मूसा, मोसा[12]	मृषा

---

१. पद्मछद्ममूर्खद्वारे वा। हेम० १. ११२.

२. श्रद्धर्द्धिमूर्धोऽर्धेन्ते वा। हेम० २. ४१.

३. 'ओत्कुष्माण्डी...' हेम० १. १२४.

४. 'पथिपृथिवी...' हेम० १. ८८.

५. 'मसृणमृगाङ्क...' हेम० १. १३०.

६. प्रत्यादौ डः। हेम० १. २०६। मडअं

७. 'वृत्तप्रवृत्तमृत्तिका...' हेम० २. २९.

८. 'मसृणमृगाङ्कमृत्यु...' हेम० १. १३०.

९. इः स्वप्रादौ। हेम० १. ४६. तथा 'इदुतौ वृष्टवृष्टि...' हेम० १. १२७.

१०. आत्कृशामृदुकमृदुत्वे वा। हेम० १. १२७. तथा 'शक्तमुक्तदष्ट...' हेम० २. २.

११. वही।

१२. उदूदोन्मृषि। हेम० १. १३६.

मुसावाआ[1]	मृषावाक्
मेढी[2]	मेथिः
मंस्सू[3]	श्मश्रु
मसाणं[4]	श्मशानम्
रणं, रत्तं[5]	रक्तम्
रअणं[6]	रत्नम्
राइक्कं, राअकेरं, रायक्कं[7]	राजकीयम्
राउलं, राअउलं[8]	राजकुलम्
राई, रत्ती[9]	रात्रिः
रुण्णं[10]	रुदितम्
रुक्खो[11]	वृक्षः
रण्णं[12]	अरण्यम्
रिच्छो, रिक्खो[13]	ऋक्षः

१. वही।   २. 'मेथिशिथिर...' हेम० १. २१५.

३. वक्रादावन्तः। हेम० १.२६. तथा 'आदेः श्मश्रु...' हेम० २.८६.

४. वर० ३. ६. तथा आदेः श्मश्रुश्मशाने। हेम० २. ८६.

५. क्तेन दिण्णादयः। वर० ८. ६२.

६. रयणं। 'क्ष्माश्लाघा...' हेम० २. १०१ तथा रअणं। 'क्लिष्ट-शिष्ट...' वर० ३. ६०.

७. परराजभ्यां क्कडिक्कौ च। हेम० २. १४८.

८. 'लुग्भाजनदनुजराजकुले...' हेम० १. २६७.

९. रात्रौ वा। हेम० २. ८८ तथा हेम० २. ८९.

१०. क्तेन दिण्णादयः वर० ८. ६२.

११. वर० १. ३२; ३. ३१.; हेम० २. १२७.

१२. वालाब्वरण्ये लुक्। हेम० १. ६६.

१३. रिः केवलस्य। हेम० १. १४० तथा ऋक्षे वा। हेम० २. १९.

रिज्जू[1]	ऋजुः
रिऊ[2]	ऋतुः
रिड्ढी, रिद्धी[3]	ऋद्धिः
रिणं[4]	ऋणम्
रिसहो[5]	ऋषभः
रिसी[6]	ऋषिः
लहुअं[7]	लघुकम्
लुक्को, लुग्गो[8]	रुग्णः
लोण, लअणं[9]	लवणम्
लाहलो[10]	लाहलः
लांगलो[11]	लाङ्गलः
लट्ठी[12]	यष्टिः
लिम्बो[13]	निम्बः

---

१. 'ऋणर्ज्वृषभ...' हेम० १. १४१. २. वही।

३. रिः केवलस्य। हेम० १४०.

४. 'ऋणर्ज्वृषभ...' हेम० १. १४१. ५. वही।

६. 'ऋणर्ज्वृषभ...' हेम० १. १४१.

७. लघुके लहोः। हेम० २. १२२.

८. 'शक्तमुक्तदष्टरुग्ण...' हेम० २. २.

९. न वा मयूख...' हेम० १. १७१.

१०. लाहललाङ्गललाङ्गूले वादेर्णः। हेम० १. २५६. इससे ण के अभाव में

११. वही।

१२. ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे। हेम० २. ३४. तथा यष्ट्यां लः। हेम० १. २४७.

१३. निम्बनापिते लण्हं वा। हेम १. २३०.

लाऊ[1]	अलाबुः
लाङ्गूलो[2]	लाङ्गूलः

ब एवं व

वारं[3]	द्वारम्
बारह[4]	द्वादश
बइल्लो[5]	बलीवर्दः
वम्हचेरं, वम्भचेरं, वह्मचरिअं[6]	ब्रह्मचर्यम्
बहिणी[7]	भगिनी
वम्महो[8]	मन्मथः
वइरं, वज्जं[9]	वज्रम्
वुंद्रं, वंद्रं[10]	वन्द्रम्
वोरं[11]	वदरम्
वोरी[12]	वदरी

---

१. वालाब्वरण्ये लुक् । हेम० १. ६६.

२. लाहललाङ्गललाङ्गूले वादेर्णः। हेम० १. २५६. इससे ण के अभाव में।

३. उत्वाभाव । देखो—हेम० २. ११२. उत्वपक्ष में दुवारं होता है.

४. पशपाषाणो हः । हेम० १. २६२. तथा हेम० १. २१९.

५. गोणादयः । हेम० २. १७४.

६. 'स्याद्भव्य...' हेम० २. १०७. हेम० २. ९३. हेम० २. ७४. हेम० २. ६३.

७. दुहितृभगिन्योर्धूआ—बहिण्यौ । हेम० २. १२६.

८. मन्मथे वः । हेम० १. २४२.

९. शर्षतप्तवज्रे वा । हेम० २. १०५.

१०. वन्द्रखण्डिते णा वा । हेम० १. ५३.

११. 'ओत्पूतरवदर...' हेम० १. १७६. १२. वही.

वणस्सई, वनप्फई[1]	वनस्पतिः
विलया, वणिदा[2]	वनिता
वरिअं[3]	वर्यम्
वेल्ली, वल्ली[4]	वल्ली
वसही[5]	वसतिः
वाहिं, वाहिरं[6]	वहिष्
वाउलो[7]	वातूलः
वाणारसी[8]	वाराणसी
वाहो (नेत्र जल में) } वाप्पो (धूम में) }[9]	वाष्प
वीसा[10]	विंशतिः
वेइल्लं, विअइल्लं[11]	विचकिल्लं
विच्छड्डो[12]	विच्छर्दः

१. बृहस्पतिवनस्पत्योः सो वा। हेम २. ६९. तथा ष्पस्पयोः फः। हे० २. ५३.

२. वनिताया विलया। हेम २. १२८.

३. 'स्याद्भव्यचैत्य...' हेम० २. १०७.

४. 'वल्ल्युत्कर....' हेम० १. ५८.

५. वितस्तिवसति....' हेम० १. २१४.

६. वहिषो वाहिं-वाहिरौ। हेम० २. १४०.

७. उर्भ्रू-हनूमत्कण्डूयवातूले। हेम० १. १२१.

८. 'करेणुवाराणस्यो....' हेम० २. ११६.

९. वाष्पे होऽश्रुणि। हेम० २. ७०.

१०. 'ईर्जिह्वा....' हेम० १. ९२. तथा हेम० १. २८.

११. 'स्थविरविचकिला....' हेम० १. १६६.

१२. 'संमर्दवितर्दिविच्छर्द....' हेम० २. ३६.

पूर	अग्घाड, अग्घव, उद्धुम, अङ्गुम, अहिरेम पक्ष में पूर
त्वर	तुअर, जअड, तूर,[1] तुर[2]
क्षर	खिर, झर, पज्झर, पच्चड, णिच्चल, णिट्टुअ
चल	चल्ल, चल
उच्छल	उत्थल
वि + गल	थिप्प, णिट्टुह
दल	विसट्ट, दल
वल	वम्फ, वल
मील	मिल्ल, मील
भ्रंश	फिड, फिट्ट, फुड, फुट्ट, चुक्क, भुल्ल पक्ष में भस
नश	णिरणास, णिवह, अवसेह, पडिसा, सेह, अवहर। पक्ष में नस्स
अव + काश	ओआस
सं + दिश	अप्पाह
दृश	निअच्छ, पेच्छ, अवयच्छ, अवयज्झ, वज्ज, सव्वव, देक्ख, ओअक्ख, अवअक्ख, पुलोअ, निअ, अवआस
स्पृश	फास, फंस, फरिस, छिव, छिह, आलुङ्ख, आलिह
प्र + विश	रिअ। पक्ष में पविस
प्र + मृष	पम्हुस

१. त्यादि और शतृप्रत्ययों के पर में रहने पर तूर होता है। जैसे :—तूरई, तूरन्तो।

२. त्यादि से भिन्न में तुर होता है। जैसे तुरिओ, तुरन्तो।

वुड्ढो[१]	वृद्धः
वुड्ढी[२]	वृद्धिः
वेण्टं, वोण्टं, विण्टं[३]	वृत्तम्
वुन्दारओ[४]	वृन्दारकः
विञ्छुओ, विच्छुओ, विंचुओ, विंछिओ[५]	वृश्चिकः
वसहो[६]	वृषभः
विट्ठं, वुट्ठं[७]	वृष्टम्
विट्ठी, वुट्ठी[८]	वृष्टिः
वड्डयरं[९]	बृहत्तरम्
विहप्फई, वुहप्फई, वहप्फई वहस्सई, वुहस्सई [१०]	बृहस्पतिः
वेलू[११]	वेणुः
वेडिसो[१२]	वेतसः
विअणा, वेअणा[१३]	वेदना

---

१. उदृत्वादौ। हेम० १. १३१. तथा हेम २. ४०.

२. वही। ३. इदेदोद्वृन्ते। हेम० १. १३९.

४. विवृत्तवृन्दारके वा। वुन्दारया, वन्दारया। हेम० १. १३२.

५. वृश्चिके श्चेर्ञ्चुर्वा। हेम० २. १६. तथा हेम० १. १२८.

६. वृषभे वा वा। हेम० १. १३३. तथा हेम० १. १२६.

७. 'इदुतौ वृष्टवृष्टि...' हेम० १. १३७. ८. वही।

९. गोणादयः। हेम० २. १७४.

१०. वा बृहस्पतौः। हेम० १. १३८., २. १३७., २. ६९. २. ५३.

११. वेणौ णो वा। हेम० १. २०३.

१२. इःस्वप्नादौ। हेम० १. ४६. इत्वे वेतसे। हेम० १. २०७

१३. 'एत इद्वा वेदना...' हेम० १. १४६.

वेरुलिअं[1]	वैदूर्यम् (वैडूर्यम्)
वारणं, वाअरणं[2]	व्याकरणम्
वावडो[3]	व्यापृतः
विउस्सग्गो[4]	व्युत्सर्गः
वोसिरणं[5]	व्युत्सर्जनम्
सअडं[6]	शकटम्
सक्को, सत्तो[7]	शक्तः
सणिअरो[8]	शनैश्चरः
समरो[9]	शवरः
सुवओ	शावकः
सारंगं[10]	शार्ङ्गम्
सिढिलं, सढिलं[11]	शिथिलम्
सिरोवेअणा, सिरविअणा[12]	शिरोवेदना
सीभरो, सीहरो, सीअरो[13]	शीकरः

१. वैडूर्यस्य वेरुलिअं । हेम० २. १३३.

२. व्याकरणप्राकारागते कगोः । हेम० १. २६८.

३. प्रत्यादौ डः । हेम० १. २०६.

४. गोणादयः । हेम० २. १७४. ५. वही ।

६. 'कगचजतदप...' हेम० १. १७७. सयढं । 'सटाशकट......' हेम० १. १९६.

७. 'शक्तमुक्त...' हेम २. २.

८. इत्सैन्धवशनैश्चरे । हेम० १. १४९. सणिच्छरो भी देखा जाता है ।

९. शवरे वो मः हेम० १. २५८. १०. शार्ङ्गे...' हेम० २. १००.

११. शिथिलेङ्गुदे वा । हेम० १. ८९. तथा हेम० १. २१५.

१२. ओतोद्वान्योन्य...' हेम० १. १५६.

१३. शीकरे भहौ वा । हेम० १. १८४.

सिप्पी[1]	शुक्तिः
सुङ्गं, सुक्कं[2]	शुक्लं, शुल्कम्
सिंगं, संगं[3]	शृङ्गम्
संकलं[4]	शृङ्खलम्
सोंडीरं[5]	शौण्डीर्यम्
सोरिअं[6]	शौर्यम्
सा, साणो[7]	श्वा
सीआणं, सुसाणं[8]	श्मशानम्
सामओ[9]	श्यामाकः
सलाहा[10]	श्लाघा
सेलिफो, सेलिम्हो[11]	श्लेष्मा
सढा[12]	सटा

---

१. 'मलिनोभयशुक्ति...' हेम० २. १३८.

२. शुक्ले ङ्गो वा । हेम० २. ११.

३. 'मसृणमृगाङ्कमृत्युशृङ्ग...' हेम० १. १३०.

४. शृङ्खले खः कः । हेम० १. १८९.

५. 'ब्रह्मचर्यतूर्यसौन्दर्यशौण्डीर्ये...' हेम० २. ६३.

६. स्याद् भव्यचैत्यचौर्यसमेषु यात् । हेम० २. १०७.

७. श्वन्‌शब्दस्य तु सा साणो इति प्रयोगौ भवतः । देखो—ध्वनिविष्वचो रुः । हेम० १. ५२.

८. आर्षे श्मशानशब्दस्य सीआणं सुसाणं इत्यपि भवति । देखो—हेम० २. ८६.

९. श्यामाके मः । हेम० १. ७१.

१०. 'क्ष्माश्लाघा...' हेम० २. १०१,

११. लात् । हेम० २. १०६; सेफो, सिलिम्हो २. ५५.

१२. सटाशकटकैटभे ढः । हेम० १.१९६.

सत्तरी[1]	सप्ततिः
सत्तरह[2]	सप्तदश
समत्थो[3]	समर्थः
संमड्डो[4]	संमर्दः
समत्तं[5]	समस्तम्
सररुहं, सरोरूहं[6]	सरोरुहम्
सव्वंगिओ[7]	सर्वाङ्गीणः
सक्खिणो[8]	साक्षी
सालवाहनो[9]	सातवाहनः
सज्झसं[10]	साध्वसम्
सामच्छ, सामत्थं[11]	सामर्थ्यम्
सुण्हा[12]	सास्ना
सीहो, सिंघो[13]	सिंहः

---

१. सप्ततौ रः । हेम० १. २१०.

२. संख्यागद्गदे रः । हेम० १. २१९.

३. हेम० २. ७९

४. 'संमर्दवितर्दि...' हेम० २. ३६.

५. असमस्तस्तम्ब इति किम् ? समत्तो, तंबो । देखो—हेम० २: ४५.

६. 'ओतोद्वान्योन्य...' हेम० १. १५६.

७. सर्वाङ्गादीनस्येकः । हेम० २. १५१.

८. गोणादयः । हेम० २. १७४.

९. अतसीसातवाहने लः । हेम० १. २११.

१०. साध्वसध्यह्यां ज्झः । हेम० २. २६.

११. सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा । हेम० २. २२.

१२. उः सास्नास्तावके । हेम० १. ७५.

१३. मांसादेर्वा । हेम० १. २९, १. ९२, तथा १. २६४.

सिंहदत्तो[१]	सिंहदत्तः
सिंहराओ[२]	सिंहराजः
सोमालो, सुउमालो, सुकुमालो[३]	सुकुमारः
सुकडं (आर्ष में)[४]	सुकृतम्
सूहवो, सुहवो[५]	सुभगः
सुण्हं, सण्हं, सुहमं (आर्ष में)[६]	सूक्ष्मं
सूरिओ[७]	सूर्यः
सूआसो[८]	सोच्छ्वासः
सिंधवं[९]	सैन्धवम्
सिण्णं, सेण्णं[१०]	सैन्यम्
सणिद्धं, सिणिद्धं[११]	स्निग्धम्
सुण्हा, सुसा[१२]	स्नुषा
सिआ[१३]	स्यात्

१. बहुलाधिकारात्क्वचिन्न भवति । देखो—हेम० १. ९२.

२. वही । ३. 'न वा मयूख…' हेम १. १७१.

४. प्रत्यादौ डः । हेम० १. २०६.

५. 'ऊत्वे दुर्भगसुभगे…' हेम० १. १९२ तथा हेम० १. ११३.

६. अदूतः सूक्ष्मे वा । हेम० १. ११८. तथा २. ७५.

७. 'स्याद्भव्यचैत्य…' हेम० २. १०७.

८. ऊत्सोच्छ्वासे । हेम० १. १५७.

९. इत्सैन्धवशनैश्चरे । हेम० १. १४९.

१०. सैन्ये वा । हेम० १. १५० तथा अइदैंत्यादौ च । हेम० १.१५१. साइन्नं भी होता है ।

११. स्निग्धे वादितौ । हेम० २. १०९.

१२. स्नुषायां ण्हो न वा । हेम० १. २६१.

१३. स्याद् भव्य…' हेम० २. १०७.

सिविणो, सिमिणो[1]	स्वप्नः
हणुमन्तो[2]	हनूमान्
हीरो, हरो[3]	हरः
हडडई, इरडई[4]	हरीतकी
हलिआरो, हरिआलो[5]	हरितालः
हलद्दी, हलिद्दी, हलद्दा[6]	हरिद्रा
हरिअंदो[7]	हरिश्चन्द्रः
हूणो, हीणो[8]	हीनः
हिअं, हिअअं[9]	हृदयम्

---

१. इः स्वप्नादौ । हेम० १. ४६, हेम० १. २५९. तथा स्वप्ने नात् हेम० २. १०८.

२. उर्भूहनूमत्कण्डूयवातूले । हेम० १२१. तथा हेम० २. १५९.

३. ईर्हरे वा । हेम० १. ५१.

४. हरीतक्यामीतोऽत् । हेम० १. ९९.

५. 'हरिताले……' हेम० २. १२१.

६. हरिद्रायां विकल्प इत्यन्ये । देखो 'पथिपृथिवी…' हेम० १. ८८.

७. श्चो हरिश्चन्द्रे हेम० २. ८७.

८. ऊर्हीनविहीने वा । हेम० १. १०३.

९. इत्कृपादौ । हेम० १. १२८. तथा किसलयकालायसहृदये यः । हेम० १. २६९.

अष्टम अध्याय

[शौरसेनी]

(१) 'प्रकृतिः संस्कृतम्'[1] इस उक्ति के अनुसार शौरसेनी में जितने भी शब्द आते हैं, उनकी प्रकृति संस्कृत है।

(२) शौरसेनी में अनादि में वर्तमान असंयुक्त त का द आदेश होता है। जैसे :—मारुदिणा मन्तिदो (त का द); एदाहि, एदाओ (एतस्मात्)

विशेष—(क) संयुक्त होने के कारण अज्जउत्त और सउन्तले में त का द नहीं हुआ।

(ख) **आदि में होने के कारण** 'तधा करेध जधा तस्स राइणो अणुकम्पणीआ भोमि' में तधा और तस्स के तकारों का द नहीं हुआ।

(३) लक्ष्य के अनुरोध से शौरसेनी में वर्णान्तर के अधः (बाद में) वर्तमान त का द होता है। जैसे :—महन्दो, निश्चिन्दो, अन्देउरं (महान्तः, निश्चिन्तः, अन्तःपुरम्)।

विशेष—उक्त नियम संयुक्त त के विषय में काचित्क है।

(४) शौरसेनी में तावत् शब्द के आदि तकार का दकार विकल्प से होता है। जैसे :—दाव, ताव (तावत्)।

(५) शौरसेनी में इन्नन्त शब्द से आमन्त्रण (सम्बोधन की प्रथमा विभक्ति) के सु के पर में रहने पर पूर्व के 'इन्' के

१. देखो—हेम० १. १. की वृत्ति तथा वर० १२. २.

न का आकार विकल्प से होता है। जैसे :—भो कञ्चुइआ (भो कञ्चुकिन्); सुहिआ (सुखिन्) अन्यत्र भो तवस्सि (भो तपस्विन्); भो मणस्सि (भो मनस्विन्)।

(६) शौरसेनी में आमन्त्रणवाले सु के पर में रहने पर पूर्ववाले नकारान्त शब्द के न के स्थान में विकल्प से म होता है। जैसे :—भो रायं (भो राजन्); भो विअयवम्मं (भो विजयवर्मन्) अन्यत्र भयव हुदवह (भगवन् हुतवह) होता है।

(७) शौरसेनी में भवत और भगवत् शब्दों से सु विभक्ति के पर में रहने पर पूर्व के नकार का मकार होता है। जैसे :—एदु भवं, समणे भगवं महावीरे। पज्जलितो भयवं हुदासणो।

(८) शौरसेनी में र्य के स्थान में य्य आदेश विकल्प से होता है। जैसे :—अय्यउत्त पय्याकुली कदम्हि (आर्यपुत्र पर्याकुलीकृतास्मि); सुय्यो (सूर्यः) पक्ष में अज्जो (आर्यः), पज्जाउलो (पर्याकुलः); कज्जपरवसो (कार्यपरवशः)।

(९) शौरसेनी में थ के स्थान में ध विकल्प से होता है। जैसे :—णाधो, णाहो, कधं, कहं; राजपधो, राजपहो (नाथः, कथं, राजपथः)।

(१०) शौरसेनी में 'इह' और 'हच्'[1] आदेश के हकार के स्थान में ध विकल्प से होता है। जैसे :—इध (इह); होध (होह = भवथ); परित्तायध (परित्तायह = परित्रायध्वे)।

(११) शौरसेनी में भू धातु के हकार का भ आदेश विकल्प से होता है। जैसे :—भोदि, होदि (भवति)।

---

१. मध्यम पुरुष के बहुवचन में इत्था और ह अथवा ह्य होते हैं। दे० इस पुस्तक के छठे अध्याय के वर्तमानकाल के प्रत्ययों में मध्यम पुरुष तथा हेम० ३. १४३.

(१२) शौरसेनी में पूर्व शब्द का 'पुरव' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे :—अपुरवं नाड्यं; अपुरवागदं (अपूर्वं नाट्यम् अपूर्वागतम्); पक्ष में अपुव्वं पदं, अपुव्वागदं (अपूर्वं पदम् , अपूर्वागतम्) ।

(१३) शौरसेनी में क्त्वा प्रत्यय के स्थान में इय और दूण ये आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे :—भविय, भोदूण; हविय, होदूण; पढिय, पढिदूण; रमिय, रन्दूण। पक्ष में—भोत्ता, होत्ता, पढित्ता, रन्ता।

विशेष—वररुचि (१२. ६) के अनुसार केवल इय होता है।

(१४) शौरसेनी में कृ और गम धातुओं से पर में आनेवाले क्त्वा प्रत्यय के स्थान में अडुअ (किसी-किसी पुस्तक के अनुसार अदुअ) आदेश विकल्प से होता है। और धातु के टि का लोप हो जाता है। जैसे :—कडुअ, गडुअ। पक्ष में—करिय, करिदूण; गच्छिय, गच्छिदूण।

विशेष—वररुचि (१२. १०.) के अनुसार दुअ होता है।

(१५) शौरसेनी में त्यादि के आदेश[1] इ और ए के स्थान में दि आदेश होता है। जैसे :—नेदि, देदि, भोदि, होदि।

(१६) अकार से पर में यदि नियम १५ वाले इ और ए हों तो उनके स्थान में दे और दि ये दोनों आदेश होते हैं। जैसे :—अच्छदे, अच्छदि; गच्छदे, गच्छदि; रमदे, रमदि; किज्जदे, किज्जदि।

---

१. देखो—इसी पुस्तक के छठे अध्याय के वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एकवचन तथा इसी अध्याय का नियम ४।

(१७) शौरसेनी में भविष्यत् अर्थ में विहित प्रत्यय के पर में रहने पर स्सि होता है। जैसे :—भविस्सिदि. करिस्सिदि, गच्छिस्सिदि।

विशेष—धातु और प्रत्ययों के बीच में आने के कारण 'स्सि' विकरण है।

(१८) शौरसेनी में अत् से पर में आनेवाले ङसि के स्थान में आदो और आदु ये आदेश होते हैं और शब्द के टि (अ) का लोप होता है। जैसे :—दूरादो, दूरादु (दूरात)।

(१९) शौरसेनी में इदानीम् के स्थान में दाणिं यह आदेश होता है। जैसे :—अनन्तर करणीयं दाणिं आणवेदु अय्यो।

विशेष—उक्त नियम साधारण प्राकृत में भी लागू होता देखा जाता है।

(२०) शौरसेनी में तस्मात् के स्थान में ता आदेश होता है। जैसे :—ता जाव पविसामि। ता अलं एदिणा माणेण।

(२१) शौरसेनी में इत् और एत् के पर में रहने पर अन्त्य मकार के आगे णकार का आगम विकल्प से होता है। इकार के पर में जैसे :—जुत्तंणिमं, जुत्तमिमं; सरिसंणिमं, सरिसमिमं; एकार के पर में जैसे :—किंणेदं, किमेदं; एवंणेदं, एवमेदं।

(२२) शौरसेनी में एव के अर्थ में य्येव यह निपात प्रयुक्त होता है। जैसे :—मम य्येव बम्भणस्स; सो य्येव एसो।

(२३) चेटी के आह्वान अर्थ में शौरसेनी में हञ्जे इस निपात का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—हञ्जे चदुरिके।

(२४) विस्मय और निर्वेद अर्थों में शौरसेनी में हीमाणहे इस निपात का प्रयोग किया जाता है। विस्मय में जैसे :—

हीमाणहे जीवन्तवच्छा मे जणणी। **निर्वेद में जैसे** :—हीमाणहे पलिस्सन्ता हगे एदेण निपविधिणो दुव्ववसिदेण।

(२५) शौरसेनी में ननु के अर्थ में णं यह निपात प्रयुक्त होता है। जैसे :—णं अफलोदया; णं अय्यमिस्सेहिं पुढमं य्येव आणत्तं, णं भवं मे अग्गदो चलदि।

विशेष—आर्ष में णं का वाक्यालङ्कार में भी प्रयोग होता है। जैसे :—नमोत्थु णं जयाणं।

(२६) शौरसेनी में हर्ष प्रकट करने के लिए अम्महे इस निपात का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—अम्महे एआए सुम्मिलाए सुपलिगढिदो भवं।

(२७) शौरसेनी में विदूषक के हर्ष द्योतन में 'हीही' इस निपात का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—हीही भो, संपन्ना मणोरधा पियवयस्सस्स।

(२८) शौरसेनी में व्यापृत शब्द के त का तथा कहीं-कहीं पुत्र शब्द के त का भी ड होता है। जैसे :—वावडो; पुडो पुत्तो (व्यापृतः, पुत्रः)।

(२९) शौरसेनी में गृद्ध जैसे शब्दों के ऋकार का इकार होता है। जैसे :—गिद्धो (गृध्रः)।

(३०) ब्रह्मण्य, विज्ञ, यज्ञ, और कन्या शब्दों के ण्य, ज्ञ और न्य के स्थान में ञ्ञ आदेश विकल्प से होता है। किन्तु पैशाची में यही कार्य नित्य ही होता है। जैसे :—ब्रह्मञ्ञो, विञ्ञो, जञ्ञो और कञ्ञा। पक्ष में बह्मण्णो, विण्णो, कण्णा (ब्रह्मण्यः, विज्ञः, कन्या)।

(३१) शौरसेनी में सर्वज्ञ और इङ्गितज्ञ शब्दों के अन्त्य ज्ञ के स्थान में ण होता है। जैसे :—सव्वण्णो, इङ्गिअण्णो (सर्वज्ञः, इङ्गितज्ञः)।

(३२) शौरसेनी में नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान शब्दों से पर में आनेवाले जस् और शस् के स्थान में णि आदेश और पूर्व स्वर का दीर्घ भी होता है। जैसे :—वणाणि, धणाणि (वनानि, धनानि)।

(३३) शौरसेनी में तिङ् प्रत्ययों के पर में रहने पर भूधातु के स्थान में भो आदेश होता है। जैसे :—भोमि।

विशेष—लृट् (अर्थात् भविष्यत् काल के तिङ्) के पर में रहने पर उक्त नियम लागू नहीं होता। जैसे :-भविस्सिदि।

(३४) शौरसेनी में तिङ् के पर में रहने पर दा धातु के स्थान में दे आदेश होता है और केवल लृट् के पर में रहने पर दइस्स आदेश। सामान्यतः तिङ् में जैसे :—देमि। लृट् के पर में रहने पर जैसे :—दइस्स।

(३५) शौरसेनी में कृञ् धातु के स्थान में कर आदेश होता है। जैसे :—करेमि।

(३६) शौरसेनी में तिङ् के पर में रहने पर स्था धातु के स्थान में चिट्ठ आदेश होता है। जैसे :—चिट्ठदि।

(३७) शौरसेनी में तिङ् के पर में रहने पर स्मृ, दृश और अस धातुओं के स्थान में क्रमशः सुमर, पेक्ख और अच्छ आदेश होते हैं। जैसे :—सुमरदि, पेक्खदि, अच्छन्ति (स्मरति, पश्यति, सन्ति)।

विशेष—(क) तिप् के साथ अस धातु के सकार के स्थान में त्थि आदेश होता है। अत्थि। जैसे :—पसंसिदं णात्थि में बाआ-विह्वो।

(ख) भविष्यत् काल में मिप्-सहित अस के स्थान में विकल्प से स्सं आदेश होता है। पक्ष में धातु के स्वर का दीर्घत्व भी होता है। स्सं; आस्सं।

(३८) शौरसेनी में स्त्री शब्द के स्थान में 'इत्थी' आदेश होता है। जैसे :—इत्थी (स्त्री)।

(३९) शौरसेनी में इव के स्थान में विअ आदेश होता है। जैसे :—विअ।

(४०) जस् सहित अस्मद् के स्थान में वअं और अम्हे ये दोनों रूप शौरसेनी में होते हैं। जैसे :—वअं और अम्हे (वयम्)।

(४१) शौरसेनी में सर्वनाम शब्दों से पर में आनेवाली (सप्तमी-एकवचन की) ङि विभक्ति के स्थान में सित्वा आदेश होता है। जैसे :–सव्वसित्वा, इदरसित्वा (सर्वस्मिन्, इतरस्मिन्)।

(४२) शौरसेनी से भावकर्म और कर्ता अर्थों में धातु से परस्मैपद के ही प्रत्यय होते हैं। भाव में जैसे :—किं दाणिं दासीएपुत्ता ? दुभिक्खरुढरङ्क विअ उद्धकं सासाअसि एसा सा सेत्ति। कर्ता में जैसे :—अज्ज वन्दामि। कर्म में जैसे :—अदोज्जेव कामीअदि।

(४३) आश्चर्य शब्द का अच्चरिअ रूप शौरसेनी में होता है। जैसे :—अहह, अच्चरिअ अच्चरिअं।

(४४) शेष शब्दों के साधन प्राकृत अथवा महाराष्ट्री के अनुसार किये जाते हैं।

प्राकृतसर्वस्व के अनुसार शौरसेनी के शब्द :—

शौरसेनी	संस्कृत	विशेष निर्देश्य
अउव्वं	अपूर्वम्	
अग्गिम्मि	अग्नौ	
अङ्गारो	अङ्गारः	इत् का अभाव
अहिमण्णू	अभिमन्युः	ञ्ञ का अभाव
अव्वह्मण्णं अव्वह्मज्जं (ञ्ञं)	अब्रह्मण्यम्	

अअं रुक्खो	अयं वृक्षः	
अमु जणो	असौ जनः	
अमु वहू	असौ वधूः	
अमु वणं	अदो वनम्	
अदो कारणादो	एतस्मात् (अमुष्मात्) कारणात्	
अहं	अहम्	
अम्हे	वयं, अस्मान्	
अम्हं, अम्हाणं	अस्माकम्	
इदो	इतः	
इअं बाला	इयं बाला	
इणं धणं	इदं धनम्	
इदं वणं	इदं वनम्	
इङ्गिअज्जो (ञ्ञो)	इङ्गितज्ञः	
ईदिसं	ईदृशम्	एत का अभाव
उलूहलो	उलूखलः	ओत् का अभाव
उवरि	उपरि	अत् का अभाव
उत्थिदो	उत्थितः	ठ का अभाव
एसो जणो	एष जनः	
कधं	कथम्	
कत्थ, कस्सि, कहि	कस्मिन्	म्मि नहीं हुआ
कण्णआ, कज्ज (ञ्ञ) आ	कन्यका	
कबन्धो	कबन्धः	
किंसुओ	किंशुकः	ओत्व का अभाव
किरातो	किरातः	च का अभाव

कीदिसं	कीदृशम्	एत् का अभाव
कुमारी	कुमारी	ह्रस्व का अभाव
कुदो	कुतः	
कुम्हण्डो	कुष्माण्डः	ह् का अभाव
केसुओ	किंशुकः	ओत्व का अभाव
कोदूहलं	कौतूहलम्	द्वित्व का अभाव
खणो	क्षण	छ का अभाव
खीरं	क्षीरम्	छ का अभाव
गद्दहो	गर्दभः	ड का अभाव
चउट्ठी	चतुर्थी	ओत् का अभाव
चउद्दही	चतुर्दशी	ओत् का अभाव
चिण्हं	चिह्नम्	न्ध का अभाव
जधा	यथा	ह्रस्व का अभाव
जण्णसेणो	यज्ञसेनः	
जादिसं	यादृशम्	
जुहुट्ठिरो	युधिष्ठिरः	अत् का अभाव
दुज्झमाणो	दह्यमानः	
णईओ	नद्यः	
णूणं	नूनम्	
तत्थ, तहिं, तस्सि	तस्मिन्	म्मि का अभाव
तए	त्वया, त्वयि	
तधा	तथा	ह्रस्व का अभाव
तादिसं	तादृशम्	
तुण्डं	तुण्डम्	ओत्व का अभाव
तुमं	त्वं अथवा त्वाम्	
तुम्हे	यूयम् ; युष्मान्	
तुम्हेहिं	युष्माभिः	

तुम्हेहिन्तो	युष्मभ्यम्	
तुम्हाणं	युष्माकम्	
तुम्हेसु	युष्मासु	
तुमोदा	त्वत्	
तुम्ह, ते	तव	
थूलं	स्थूलम्	द्वित्व का अभाव
दस, दह	दश	
दसरहो	दशरथः	
दे	तव	
देअरो	देवरः	इत् का अभाव
देव्वं	दैवम्	अइ का अभाव
नइए	नद्या, नद्याः, नद्याः, नद्याम्	
पओट्ठो	प्रकोष्ठः	षत्व का अभाव
पासाणो	पाषाणः	ष, ह का अभाव
पावो	पापः	
पिण्डं	पिण्डम्	एत्व का अभाव
पिदणा	पृतना	
पुरुसो	पुरुषः	इत्व का अभाव
पोक्खरं	पुष्करम्	
पोक्खरणी	पुष्करिणी	
फोडओ	स्फोटकः	ख का अभाव
भिन्दिवालो, भिण्डिवालो	भिन्दिपालः	
भाणुओ, भाणओ	भानवः	
मए	मया	
मंसं	मांसम्	

मइ	मयि	
मऊरो	मयूरः	ओत् का अभाव
मत्	मत्	
मह, मम	मम	
महूसो	मधूकः	ओत् का अभाव
मत्तो, ममादो	मत्	
मादरं	मातरम्	
मालाओ	मालाः	
मिओ	मृतः	
मे	माम्	
मे	मम	
मोत्ती	मुक्ता	
रुक्खो	वृक्षः	ओत् का अभाव
लवणं	लवणम्	ओत् का अभाव
लावण्यं	लावण्यम्	ओत् का अभाव
वअरं	वदरम्	ओत् का अभाव
वष्फो	वाष्पः	
वअं	वयम्	
वहुए	वध्वा, वध्वाः, वध्वाः, वध्वाम्	
वहूओ	वध्वः	
वालाए	वालया, बालायाः, बालयाः, बालायाम्	
वाउम्मि	वायौ	
विहप्फदी	बृहस्पतिः	भ आदि का अभाव
वेअणा	वेदना	इत् का अभाव
वेदसो	वेतसः	इत् का अभाव

वो	वः (युष्मान्, युष्माकम्)	
सहलं	सफलम्	
सरिक्खं	सदृक्षम्	छ का अभाव
सम्मद्दो	सम्मर्दः	ड का अभाव

प्राकृत सर्वस्व के अनुसार शौरसेनी में तिङन्त रूपों के नियम

(४५) (क) धातुओं से परस्मैपद ही होते हैं।
(ख) तीनों कालों में प्रायः लट् लकार ही होता है।
(ग) त्यादि के तकार का दकार होता है।
(घ) बहुवचन में तकार का धकार होता ।
(ङ) उत्तम पुरुष में म्ह होता है।
(च) उत्तम पुरुष में मिप् के साथ स्सम् ही होता है।
(छ) ज, ज्ज, हा, सोच्छं वोच्छं ये सब नहीं होते हैं।

प्राकृतसर्वस्व के अनुसार शौरसेनी धातु

संस्कृत	शौरसेनी	सिद्ध क्रियापद
भू	भो और हो	भोदि, होदि, क्त में भूदं
दृश	पेच्छ[1]	पेच्छदि
ब्रू	वुच्च	वुच्चदि
कथ	कध	कधेदि
घ्रा	जिग्घ	जिग्घदि
भा	भाअ	भाअदि
मृज	फुंस	फुसदि
घूर्ण	घुम्म	घुम्मदि

1. हेमचन्द्र के अनुसार पेक्ख आदेश होता है। देखो अष्टम अध्याय का नियम ३७।

ष्टु	थुण	थुणदि
भी	भा	भादि
सृज	पस	पसदि
चर्च	चव्व	चव्वदि
ग्रह	गेण्ह	गेण्हदि
गृह्य	गेज्झ, घेप्प	गेज्झदि, घेप्पदि
शक	सक्कुण, सक्क	सक्कुणादि, सक्कदि
म्लै	मिआअ	मिआअदि
उद् + स्था	उत्थ	उत्थेदि
स्वप	सुअ	सुअदि
शीङ्	सुआ	सुआदि
रुध	रोव	रोवदि
रुद	रोद	रोददि
मस्ज	बुड्ड	बुड्डदि
दुह्य	दुहीअ	दुहीअदि
उह्य	वहीअ	वहीअदि
लिह्य	लिहीअ	लिहीअदि

प्राकृतसर्वस्व के अनुसार नीचे लिखे शब्दों को भी शौरसेनी में जानना चाहिये।

भिफ्फो (भीष्मः), सत्तुग्घो (शत्रुघ्नः), जेत्तिकं (यावत्), तेत्तिकं (तावत्), एत्तिकं (एतावत्), भट्टा (भर्ता) धूदा, दुहिदिआ (दुहिता), इत्थी (स्त्री), भादा, भदुओ (भ्राता, भ्रातरः), जामादा, जामादुओ (जामाता, जामातरः)।

द्राक् अर्थ में दउत्ति, निश्चय अर्थ में क्खु और खु; इव के अर्थ में व्व; एव के अर्थ में ज्जव और जेव तथा ननु के अर्थ में णं प्रयुक्त होते हैं।

नवम अध्याय

[मागधी]

(१) प्रकृतिः शौरसेनी (वर० ११. २.) इस वररुचि सूत्र के अनुसार मागधी की प्रकृति शौरसेनी मानी गई है। साथ ही साधारण प्राकृत के शब्द भी मागधी के मूल माने जाते हैं।

(२) मागधी में अदन्त पुंलिङ्ग शब्दों का प्रथमा के एक-वचन में ओकारान्त रूप न होकर एकारान्त रूप होता है। जैसे :—एशे मेशे; एशे पुलिशे (एष मेषः, एष पुरुषः); करेमि भन्ते (करोमि भदन्त)।

(३) मागधी में रेफ के स्थान में लकार और दन्त्य सकार के स्थान में तालव्य शकार होते हैं। **रेफ का जैसे :—** नले, कले (नरः करः), **स का श जैसे :—**हंशे (हंसः); **दोनों का जैसे :—**शालशे, पुलिशे (सारसः, पुरुषः)।

(४) मागधी में यदि सकार और षकार (अलग-अलग) संयुक्त हों तो उनके स्थान में स होता है। ग्रीष्म शब्द में उक्त आदेश नहीं होता। **संयुक्त सकार में जैसे :—**पक्खलदि हस्ती (प्रस्खलति हस्ती) बुहस्पदी (बृहस्पतिः) मस्कली (मस्करी), विस्मये (विस्मयः); **संयुक्त षकार में जैसे :—** शुष्क-दालुं (शुष्कदारु), कस्टं (कष्टम्), विस्नुं (विष्णुम्), उस्मा (ऊष्मा), निस्फलं (निष्फलम्) धनुस्खण्डं (धनुष्खण्डम्)

विशेष—(क) उक्त नियम जहाँ लगता है, वहाँ संयोग के आगे-पीछे के वर्णों का लोप नहीं होता।

(ख) ग्रीष्म शब्द में उक्त नियम के लागू नहीं होने से गिम्हवाशले (ग्रीष्मवासरः) होता है।

(५) द्विरुक्त ट (ट्ट) और षकार से आक्रान्त (युक्त) ठकार के स्थान में मागधी में स्ट आदेश होता है। **ट्ट में जैसे :**—पस्टे (पट्टः), भस्टालिका (भट्टारिका), भस्टिणी (भट्टिनी), **ष्ठ में जैसे :**—शुस्टु कदं (सुष्ठु कृतम्) कोस्टागालं (कोष्ठागारम्)।

(६) स्थ और र्थ इन दोनों के स्थान में मागधी में सकार से संयुक्त तकार होता है। **स्थ में जैसे :**—उवस्तिदे (उपस्थितः), शुस्तिदे (सुस्थितः); **र्थ में जैसे :**—अस्तवदी (अर्थवती), शस्तवाहे (सार्थवाहः)।

(७) मागधी में ज, द्य और य के स्थान में य आदेश होता है। **ज का जैसे :**—यणवदे (जनपदः), अय्युणे (अर्ज्जुनः), दुय्यणे (दुर्ज्जनः), गय्यदि (गर्ज्जति); **द्य का जैसे :**—मय्यं (मद्यम्), अय्य किल वियाहले आगदे (अद्य किल विद्याहर आगतः।); **य का जैसे :**—यादि (याति)।

विशेष—इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय के चौदहवें नियम के बाधनार्थ य के स्थान में पुनः य का विधान किया जाता है।

(८) मागधी में न्य, ण्य, ज्ञ और ञ्ज इन संयुक्ताक्षरों के

स्थान में द्विरुक्त ञ्ञ होता है। **न्य का जैसे :**—अहिमञ्ञु-कुमाले, (अभिमन्युकुमारः) कञ्ञकावलणं (कन्यकावरणम्); **ण्य का जैसे :**—अबम्हञ्ञं (अब्रह्मण्यम्), पुञ्ञाहं (पुण्याहम्); **ज्ञ का जैसे :**—पञ्ञाविशाले (प्रज्ञाविशालः) शव्वञ्ञे (सर्वज्ञः), अवञ्ञा (अवज्ञा); **ञ्ज का जैसे :**—अञ्ञली (अञ्जलिः), धणञ्ञए (धनञ्जयः), पञ्ञले (पञ्जरः)।

(९) मागधी में व्रज धातु के जकार का ञ्ञ आदेश होता है। जैसे :—वञ्ञदि (व्रजति)।

विशेष—उक्त नियम इसी अध्याय के सातवें नियम का अपवाद है। अन्यथा य आदेश हो जाता है।

(१०) मागधी में अनादि में वर्तमान छ के स्थान में शकार से संयुक्त चकार (श्च) होता है। जैसे :—गश्च, गश्च (गच्छ, गच्छ), उश्चलदि (उच्छलति), पिश्चिले (पिच्छिलः), तिरिश्चि पेस्कदि[1] (तिरिच्छि पेच्छइ = तिर्यक् प्रेक्षते)।

(११) मागधी में अनादि में वर्तमान क्ष के स्थान में जिह्वामूलीय ≍क[2] आदेश होता है। जैसे :—य≍के (यक्षः), ल≍कशे (रक्षसे)।

(१२) मागधी में प्रेक्ष और आचक्ष के क्ष के स्थान में स्क आदेश होता है। जैसे :—पेस्कदि (प्रेक्षते), आचस्कदि (आचक्षते)।

विशेष—पूर्व नियम (ग्यारहवें) का यह नियम अपवाद है।

---

१. देखो—अगला नियम (१२)।

२. प्राकृत-प्रकाश के अनुसार स्क आदेश होकर यस्के और लस्कशे रूप होते हैं। दे०—वर० ११. ८.

(१३) मागधी में स्था धातु के तिष्ठ के स्थान में चिष्ठ आदेश होता है। जैसे :—चिष्ठदि (तिष्ठति)।

विशेष—किसी-किसी पुस्तक के अनुसार चिट्ठ आदेश होकर चिट्ठदि रूप भी होता है।

(१४) मागधी में अवर्ण से पर में आनेवाले ङस् (षष्ठी के एकवचन) के स्थान में आह आदेश विकल्प से होता है। आह के पूर्ववर्ती टि का लोप होता है। जैसे :—हगे न **ईदिशाह कम्माह** काली (अहं न ईदृशस्य कर्मणः कारी); पक्ष में—**भीमशेणस्स** पश्चादो हिण्डीअदि।

(१५) मागधी में अवर्ण से पर में विद्यमान आम् के स्थान में आहँ आदेश विकल्प से होता है और पूर्व के टि का लोप हो जाता है। जैसे :—जाहँ (येषाम्); पक्ष में—जाणं (येषाम्)।

(१६) मागधी में अहम् और वयम् के स्थान में हगे आदेश होता है। जैसे :—हगे शक्कावदालतित्तणिवाशी धीवले (अहं शक्रावतारतीर्थनिवासी धीवरः)।

विशेष—प्राकृतप्रकाश के अनुसार अहं के स्थान पर हके और अहके भी होते हैं।

प्राकृत-प्रकाश के अनुसार मागधी के विशेष शब्द।

संस्कृत	मागधी	प्रा. प्र. अ.	सूत्र
माषः	माशे	११	३
विलासः	विलाशे	११	३
जायते	यायदे	११	४
परिचयः	पलिचये	११	५
गृहीतच्छलः	गहिदच्छले	११	५

विजलः	वियले	११	५
निर्झरः	णिज्झिले	११	५
हृदये	हडक्के	११	६
आदरः	आलले		
कार्यम्	कय्ये	११	७
दुर्जनः	दुय्यणे	११	७
राक्षसः	लस्कशे	११	८
दक्षः	दस्के	११	८
अहम्	हके, अहके, हगे	११	६
एष राजा	एशि लाआ	११	१०
एष पुरुषः	एशे पुलिशे	११	१०
हसितः	हशिदु, हशिदि, हशिद	११	११
पुरुषस्य	पुलिशाह, पुलिशश्श	११	१२
तिष्ठति	चिष्ठदि	११	१४
कृतः	कडे	११	१५
मृतः	मडे	११	१५
गतः	गडे	११	१५
सोढ्वा	सहिदाणि	११	१६
कृत्वा	कारिदाणि		
शृगालः	शिआले, शिआलके	११	१६

दशम अध्याय

[पैशाची]

(१) पैशाची की प्रकृति शौरसेनी है।

(२) पैशाची में ज्ञ के स्थान में ञ्ञ होता है। जैसे:—पञ्ञा (प्रज्ञा), सञ्ञा (संज्ञा), सव्वञ्ञो (सर्वज्ञः), ञ्ञानं (ज्ञानम्), विञ्ञानं (विज्ञानम्)।

(३) राजन् शब्द के रूपों में जहाँ-जहाँ ज्ञ रहता है, उस ज्ञ के स्थान में चिञ् आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—राचिञा लपितं, रञ्ञा लपितं (राज्ञा लपितम्), राचिञो धनं रञ्ञो धनं (राज्ञो धनम्)।

(४) पैशाची में न्य और ण्य के स्थान में ञ्ञ आदेश होता है। जैसे :—कञ्ञका अभिमञ्ञू (कन्यका, अभिमन्युः)। पुञ्ञकम्मो, पुञ्ञाहं (पुण्यकर्म, पुण्याहम्)।

(५) पैशाची में णकार का नकार हो जाता है। जैसे:—गुनगनयुत्तो (गुणगणयुक्तः), गुनेन (गुणेन)।

(६) पैशाची में तकार और दकार के स्थान में तकार हो जाता है। जैसे:—भगवती, पव्वती (भगवती, पार्वती)। मतनपरवसो (मदनपरवशः), सतनं (सदनम्), तामोतरो (दामोदरः), होतु (होदु शौ०)।

(७) पैशाची में लकार के स्थान में ळकार हो जाता है। जैसे:—सळिळं, कमळं (सलिलं कमलम्)।

(८) पैशाची में श और ष के स्थान में स होता है। जैसे:—सोभति, सोभनं, ससी (शोभते, शोभनं, शशी)। विसमो, विसानो (विषमः, विषाणः)।

(९) पैशाची में हृदय शब्द के यकार के स्थान में पकार हो जाता है। जैसे:—हितपक (हृदयकम्)।

(१०) पैशाची में दु के स्थान तु आदेश विकल्प से होता जैसे:—कुतुम्बकं, कुटुम्बकं (कुटुम्बकम्)।

(११) पैशाची में क्त्वा प्रत्यय के स्थान में तून आदेश होता है। जैसे:—गन्तून, हसितून, पठितून (गत्वा, हसित्वा, पठित्वा)।

(१२) पैशाची में ष्ट्वा के स्थान में द्धून और त्थून आदेश होते हैं। जैसे:—नद्धून, नत्थून; तद्धून, तत्थून (नष्ट्वा, दृष्ट्वा)।

(१३) पैशाची में कहीं-कहीं र्य, स्न और ष्ट के स्थानों में क्रमशः रिय, सिन और सट आदेश होते हैं। जैसे:—भारिया, सिनातं, कसटं (भार्या, स्नातम्, कष्टम्)।

विशेष—(क) प्राकृतप्रकाश (१०. ७.) के अनुसार स्न के स्थान में सन आदेश होता है। जैसे:—सनानं, सनेहो (स्नानम्, स्नेहः)।

(ख) नियम १३ में 'कहीं-कहीं' कहने से सुज्जो (सूर्यः), सुनुसा और तिट्ठो (दिष्टः) में उक्त नियम नहीं लगा।

(१४) पैशाची में भाव-कर्मवाले यक् के स्थान में इय्य आदेश होता है। जैसे:—रमिय्यते, पठिय्यते (रम्यते, पठ्यते)।

(१५) पैशाची में कृ धातु से पर में आये हुए भाव-कर्मवाले यक् के स्थान में ईर आदेश होता है और धातु के टि (ऋ) का लोप हो जाता है। जैसे:—कीरते (क्रियते)।

(१६) पैशाची में यादृश, तादृश आदि के दृ के स्थान में

ति आदेश होता है। जैसे:—यातिसो, तातिसो, भवातिसो, अञ्ञातिसो, युम्हातिसो, अम्हातिसो (यादृशः, तादृशः, भवादृशः, अन्यादृशः, युष्मादृशः, अस्मादृशः)।

(१७) पैशाची में इच् और एच् (देखो छठे अध्याय में वर्तमान काल के प्रत्यय) के स्थान में ति आदेश होता है। जैसे:—वसुआति, भोति, नेति, तेति।

(१८) पैशाची में अकार से पर में आनेवाले इच् और एच् के स्थान में ते और ति दोनों आदेश होते हैं। जैसे:—लपते, लपति; अच्छते, अच्छति; गच्छते, गच्छति; रमते, रमति।

(१९) पैशाची में इच् और एच् के स्थान में, भविष्यत् काल में, स्सि न होकर एय्य आदेश ही होता है। जैसे:—हुवेय्य[1] (भविष्यति)।

(२०) पैशाची में अकार से पर में आनेवाले ङसि के स्थान में आतो और आतु ये दो आदेश होते हैं। जैसे:—तुमातो, तुमातु; ममातो, ममातु।

(२१) पैशाची में टा के साथ तद् और इदम् शब्दों के स्थान में नेन और स्त्रीलिङ्ग में नाए आदेश होते हैं। जैसे:—नेन कतसिनानेन (तेन कृतस्नानेन अथवा अनेन इत्यादि); पूजितो च नाए (पूजितश्चानया)।

प्राकृत-प्रकाश के अनुसार पैशाची के विशेष शब्द—

संस्कृत	पैशाची	प्रा. प्र. अ.	सूत्र
मेघः	मेखो	१०	२
गगनम्	गकनं	१०	२
राजा	राचा	१०	२

1. तं तद्धून चिन्तितं रञ्ञा का एसा हुवेय्य (तां दृष्ट्वा चिन्तितं राज्ञा का एषा भविष्यति !

निर्झरः	णिच्छरो	१०	२
वडिशम्	वटिशं	१०	२
दशवदनः	दसवत्तनो		
माधवः	माथवो	१०	२
गोविन्दः	गोविन्तो	१०	२
केशवः	केसवो	१०	२
सरभसं	सरफसं	१०	२
शलभः	सलफो	१०	२
संग्रामः	संगामो	१०	२*
इव	पिव	१०	४
तरुणी	तलुनी	१०	५
कष्टम्	कसठं	१०	६
स्नानम्	सनानं	१०	७
स्नेहः	सनेहो	१०	७
भार्या	भारिआ	१०	८
विज्ञातः	विञ्ञातो	१०	९
सर्वज्ञः	सव्वञ्ञो	१०	९
कन्या	कञ्ञा	१०	९
कार्यम्	कच्चं	१०	११
राज्ञा	राचिना, रञ्ञा	१०	१२
राज्ञः	राचिनो, रञ्ञो	१०	१२
दत्त्वा	दातूनं	१०	१३
गृहीत्वा	घेत्तूनं	१०	१३
हृदयकम्	हितअकं	१०	१४

* यह सूत्र नहीं लगा।

एकादश अध्याय

[अपभ्रंश]

(१) अपभ्रंश में किसी एक स्वर के स्थान में कोई एक दूसरा स्वर प्रायः हो जाता है। जैसे :—कच्चित् के लिए अपभ्रंश में कच्चु और काच्च; वेणी के लिए वेण और वीण; बाहु के लिए बाह और बाहा; पृष्ठ के लिए पट्ठि, पिट्ठि और पुट्ठि; तृण के लिए तणु, तिणु और तृणु; सुकृतम् के लिए सुकिदु, सुकिउ और सुकृदु; क्लिन्न के लिए किन्नउ, किलिन्नउ; लेखा के लिए लिह, लीह और लेह तथा गौरी के लिए गउरी और गोरी ये रूप विभिन्न स्वरों के आने से होते हैं।

(२) अपभ्रंश में स्वादि विभक्तियों के आने पर प्रायः कभी तो प्रातिपदिक के अन्त्य स्वर का दीर्घ और कभी ह्रस्व हो जाता है। सु विभक्ति में जैसे :—ढोल्ला, सामला (विट, श्यामला, ह्रस्व स्वर का दीर्घ); धण, सुवण्णरेह (धण संस्कृत का धन्या है। कुछ लोग प्रिया शब्द के स्थान में धण आदेश मानते हैं। सुवर्णरेखा। इनमें दीर्घ स्वर का

१-१. ढोल्ला सामला धण चम्पावण्णी।
णाइ सुवण्णरेह कसवट्टइ दिण्णी॥
(विटः श्यामलः धन्या चम्पकवर्णा।
इव सुवर्णरेखा कषपट्टके दत्ता॥)

ह्रस्व हुआ है।) **स्त्रीलिङ्ग में जैसे :—विट्टीए** (पुत्रि। यहाँ ह्रस्व का दीर्घ हुआ है), **पइट्ठि** (प्रविष्टा। यहाँ दीर्घ का ह्रस्व हुआ है।), **निसिआ खग्ग** (निशिताः खड्गा। यहाँ दीर्घ का ह्रस्व हुआ है।), **घोडा** (अश्वाः। यहाँ ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो गया है।)

(३) अपभ्रंश में सु (प्रथमा के एकवचन) और अम् विभक्तियों के आने पर शब्द के अन्तिम अ के स्थान में उ हो जाता है। जैसे :—दहमुहु[3], तोसिअ-संकरु, चउमुहु, छंमुहु (दशमुखः, तोषित-शंकरः, चतुर्मुखं, षण्मुखम्)।

(४) अपभ्रंश में पुंल्लिङ्ग में वर्तमान शब्द (प्रातिपदिक) के अन्त्य अ के स्थान में आ विकल्प से होता है, जब कि उन

---

१. विट्टीए मइ भणिय तुहुँ मा करु वङ्की दिट्ठि।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हिअइ पइट्ठि॥
(पुत्रि मया भणिता त्वं 'मा कुरु वक्रां दृष्टिम्'।
पुत्रि सकर्णा भल्लिर्यथा मारयति हृदये प्रविष्टा॥)

२. एइ ति घोडा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणिअइ जो न वि वालइ वग्ग॥
(एते ते अश्वाः एषा स्थली एते ते निशिताः खड्गाः।
अत्र मनुष्यत्वं ज्ञायते यः नापि वालयति वल्गाम्॥)

३. दहमुहु भुवण-भयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रहवरि चडिअउ।
चउमुहु छंमुहु झाइवि एक्कहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ॥
(दशमुखः भुवनभयंकरः तोषितशङ्करः निर्गतः रथवरे आरूढः।
चतुर्मुखं षण्मुखं ध्यात्वा एकस्मिन् लगित्वा इव दैवेन घटितः)।

अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों से पर में सु विभक्ति आई हुई हो। जैसे :—जो[1], सो (यः, सः)।

विशेष—पुंल्लिङ्ग में कहने से 'अङ्गहिं अङ्गु न मिलउ हलि' (अङ्गैः अङ्गं न मिलितं सखि) में नपुंसक अङ्गु और मिलिउ में ओ नहीं हुआ।

(५) अपभ्रंश में टा विभक्ति के आने पर शब्द के अन्तिम अ के स्थान में ए हो जाता है। जैसे :—पवसन्तेण[2] (प्रवसता), नहेण (नखेन)।

(६) अपभ्रंश में शब्द के अन्त्य अकार और ङि (सप्तमी एकवचन) के स्थान में इकार और एकार होते हैं। जैसे :—तलि घल्लइ[3], तले घल्लइ (तले क्षिपन्ति)।

(७) अपभ्रंश में शब्द के अन्त्य अ के स्थान में, भिस् (तृतीया के बहुवचन) के पर में रहने पर, एकार आदेश विकल्प

---

१. अगलिअ नेह-निवट्टाहं जोअण-लक्खु वि जाउ।
वरिस-सएण वि जो मिलइ सहि सोक्खहं सो ठाउ॥
(अगलितस्नेहनिर्वृत्तानां योजनलक्षमपि जायताम्।
वर्षशतेनापि यः मिलति सखि सौख्यानां स स्थानम्॥)

२. जेमहु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण।
ताण गणन्तिएँ अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण॥
(ये मम दत्ताः दिवसाः दयितेन प्रवसता।
तान् गणयन्त्याः अङ्गुल्यः जर्ज्जरिताः नखेन॥)

३. सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संमाणेइ खलाइं॥
(सागरः उपरि तृणानि धरति तले क्षिपति रत्नानि।
स्वामी सुभृत्यमपि परिहरति संमानयति खलान्॥)

से होता है। जैसे :—लक्खेहिं[1] (लक्षैः); पक्ष में गुणहिँ (गुणैः)।

(८) अपभ्रंश में अकारान्त शब्द से पर में आने वाले ङसि विभक्ति के स्थान में हे और हु आदेश होते हैं। जैसे :—वच्छहे[2] गृण्हइ, वच्छहु गृण्हइ (वृक्षात् गृह्णाति)।

(९) अपभ्रंश में अदन्त शब्द से पर में आने वाले भ्यस् (पञ्चमी बहुवचन) के स्थान में हुं आदेश होता है। जैसे :—गिरि-सिङ्गहुं[3], (गिरिशृङ्गेभ्यः)।

(१०) अपभ्रंश में अदन्त शब्द से पर में आने वाले ङस् (षष्ठी एकवचन) के स्थान में सु, हो और स्सु ये तीन आदेश होते हैं। जैसे :—तसु[4] (तस्य), दुल्लहहो (दुर्लभस्य) सुअणस्सु (सुजनस्य)।

---

१. गुणहिं न संपइ कित्ति पर फल लिहिआ भुञ्जन्ति।
केसरि न लहइ बोड्डिअ विगय लक्खोहिं घेप्पन्ति॥
(गुणैः न संपत् कीर्तिः परं फलानि लिखितानि भुञ्जन्ति।
केसरी न लभते कपर्दिकामपि गजाः लक्षैः गृह्यन्ते॥)

२. वच्छहें गृण्हइ फलइँ जणु कड्डु-पल्लव बज्जेइ।
तो वि महद्दुमु सुअणु जिवँ ते उच्छङ्गि धरेइ॥
(वृक्षात् गृह्णाति फलानि जनः कटुपल्लवान् वर्जयति।
तथापि महाद्रुमः सुजन इव तान् उत्सङ्गे धरति॥)

३. दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ।
जिह गिरिसिङ्गहुं पडिअ सिल अन्नु विचूरु करेइ॥
(दूरोड्डाणेन पतितः खलः आत्मानं जनं मारयति।
यथा गिरिशृङ्गेभ्यः पतिता शिला अन्यदपि चूर्णीकरोति॥)

४. जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउं कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु॥

(११) अपभ्रंश में अदन्त शब्द से पर में आने वाले आम् के स्थान में हं आदेश होता है। जैसे :—तणहं[1] (तृणानाम्)।

(१२) इदन्त और उदन्त शब्दों से पर में आने वाले आम् के स्थान में, अपभ्रंश में हुं और हं दोनों आदेश होते हैं। जैसे :—सउणिहं[2] (शकुनीनाम्) इत्यादि।

विशेष—उक्त नियम सुप् सप्तमी-बहुवचन) में भी लागू होता है। जैसे :—दुहुँ[3] (द्वयोः)।

(१३) अपभ्रंश में इदन्त, उदन्त शब्दों से पर में आने वाले ङसि, भ्यस् और ङि के स्थान में क्रमशः हे, हुं और हि आदेश होते हैं। जैसे :—गिरिहे[4], तरुहे (गिरेः, तरोः) भ्यस् का

(यः गुणान् गोपयति आत्मीयान् प्रकटान् करोति परस्य।
तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य बलिं करोमि सुजनस्य ॥)

१. तणहं तइज्जा भङ्गि न वि तें अवड-यडि वसन्ति।
अह जणु लग्गिवि उत्तरइ अह सह सइ मज्जन्ति ॥
(तृणानां तृतीया भङ्गी नापि तानि अवटतटे वसन्ति।
अथ जनः लगित्वा उत्तरति अथ सह स्वयं मज्जन्ति ॥)

२. दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहँ पक्क फलाइं।
सो वरि सुक्खु पइट्ठण वि कण्णहिं खलवयणहिं ॥
(देवः घटयति वने तरुणं शकुनीनां (कृते) पक्कफलानि।
तद् वरं सौख्यं प्रविष्टानि नापि कर्णयोः खलवचनानि ॥)

३. धवलु विसूरइ सामिअहो, गरुआ भरु पिक्खेवि।
हउं कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहिं, खण्डइं दोण्णि करेवि ॥
(धवलः खिद्यति स्वामिनः गुरुं भारं प्रेक्ष्य।
अहं किं न युक्तः द्वयोर्दिशोः खण्डे द्वे कृत्वा ॥)

४. गिरिहें सिलायलु तरुहें फलु घेप्पइ नीसावन्नु।
घरु मेल्लेप्पिणु माणुसहँ तो वि न रुच्चइ रन्नु ॥

का हुं :—तरुहुं[1] (तरुभ्यः); ङि का हि जैसे :—कलिहि[2] (कलौ)।

(१४) अपभ्रंश में अदन्त शब्द से पर में आने वाले टा के स्थान में ण और अनुस्वार आदेश होते हैं। जैसे :—दइएं (दयितेन), पवसन्तेण (प्रवसता)। देखो—इसी अध्याय में नियम ५ की पाद टिप्पणी।

(१५) अपभ्रंश में इकारान्त, उकारान्त शब्दों से पर में आने वाले टा के स्थान में एं, ण और अनुस्वार आदेश होते हैं। जैसे :—अग्गिएं[3] (अग्निना); अग्गिण[4] (अग्निना); अग्गिं (अग्निना)।

(गिरेः शिलातलं तरोः फलं गृह्यते निःसामान्यम्।
गृहं मुक्त्वा मनुष्याणां तथापि न रोचते अरण्यम्॥)

१. तरुहुँ वि वक्कलु फलु मुणिवि परिहणु असणु लहन्ति।
सामिहुँ एत्तिउ अग्गलउं आयरु भिच्चु गृहन्ति॥
(तरुभ्यः अपि वल्कलं फलं मुनयः अपि परिधानम् अशनं लभन्ते
स्वामिभ्यः, इयद् अधिकादरं भृत्या गृह्णन्ति।)

२. अह विरल पहाउ जि कलिहि धम्मु।
(अथ विरलप्रभाव एव कलौ धर्मः।)

३. अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएं सीअलु तेवं।
जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केवं॥
(अग्निना उष्णं भवति जगत् वातेन शीतलं तथा।
यः पुनः अग्निना शीतलः तस्य उष्णत्वं कथम्?)

४. विप्पिअ-आरउ इइ वि पिउ तो वि तं आणहि अज्जु।
अग्गिण दड्ढा जइ वि घरु तो तें अग्गिं कज्जु॥
(विप्रियकारकः यद्यपि प्रियः तदपि तमानय अद्य।
अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं तदपि तेन अग्निना कार्यम्॥)

(१६) अपभ्रंश में सु, अम् , जस् और शस् विभक्तियों का लोप हो जाता है। देखो इसी अध्याय के नियम २ की पादटिप्पणी ३ में 'एइ ति घोड़ा' इत्यादि में सु, अम् , जस् का लोप।

(१७) अपभ्रंश में षष्ठी विभक्ति का प्रायः लुक् हो जाता है। जैसे:—गय[1] (गजानाम्)।

(१८) अपभ्रंश में यदि किसी शब्द से संबोधन में जस् विभक्ति आई हो तो उसके स्थान में हो आदेश होता है। जैसे:- तरुणहो, तरुणिहो[2] (हे तरुणाः हे तरुण्यः)।

विशेष:—यह नियम पूर्वोक्त सोलहवें नियम का अपवाद है।

(१९) अपभ्रंश में भिस् और सुप् के स्थान में हिं आदेश होता है। जैसे:—गुणहिं (गुणैः); मग्गेहिं[3] तिहिं (मार्गेषु त्रिषु)।

(२०) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले जस् और शस् (प्रत्येक) के स्थान में उ और ओ आदेश होते हैं। जैसे:—अङ्गुलिउ (अङ्गुल्यः। जस्=उ); सव्व-

---

1. संगर-सएहिं जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु।
अइमत्तहं चत्तङ्कुसहं गय कुम्भइं दारन्तु॥
(संगरशतेषु यो वर्ण्यते पश्य अस्माकं कान्तम्।
अतिमत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां गजानां कुम्भान् दारयन्तम्॥)

२. तरुणहो तरुणिहो मुणिउ मइं करहु म अप्पहों घाउ।
(हे तरुणाः, हे तरुण्यः (च) ज्ञातं मया आत्मनः घातं मा कुरुत।)

३. भाईरहि जिवँ भारइ मग्गेहिं तिहिं वि पयट्टइ।
(भागीरथी यथा भारते मार्गेषु त्रिषु प्रवर्तते।)

ङ्गाउ[1] (सर्वाङ्गीः । शस्=उ); विलासिणीओ[2] (विलासिनीः । शस्=ओ) ।

(२१) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले टा (तृतीया-एकवचन) के स्थान में ए आदेश होता है । जैसे :—ससिमण्डल-चन्दिमए[3] (शशिमण्डलचन्द्रिकया) ।

(२२) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले ङस् (षष्ठी-एकवचन) और ङसि (पञ्चमी-एकवचन) के स्थान में हे आदेश होता है । जैसे :—मज्झहे,[4] तहे,[5] धणहे[6] इत्यादि (मध्यायाः, तस्याः, धन्यायाः इत्यादि); बालहे[7] (बालायाः) ।

१–२, सुन्दर-सव्वङ्गाउ विलासिणीओ पेच्छन्तरण ।
(सुन्दरसर्वाङ्गीः विलासिनीः प्रेक्षमाणानाम् ॥)

३. निअ-मुह-करहिं वि मुद्ध कर अन्धारइ पडिपेक्खइ ।
ससि-मण्डल-चन्दिमए पुणु काइँ न दूरे देक्खइ ॥
(निजमुखकरैः अपि मुग्धा करमन्धकारे प्रतिप्रेक्षते ।
शशिमण्डलचन्द्रिकया पुनः किं न दूरे पश्यति ?)

४–७. फोडेन्ति जें हियडउं अप्पणउं ताहं पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा बालहे जाया विसम थण ॥
(स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयं तयोः परकीया का घृणा ?
रक्षत लोकाः आत्मानं बालायाः जातौ विषमौ स्तनौ ॥)
तुच्छ मज्झहे तुच्छ-जम्पिरहे ।
तुच्छच्छरोमावलिहे तुच्छरायतुच्छयरहास हे ।
पियवयणु अलहन्तिअहे तुच्छकाय-वम्मह-निवासहे ॥
अन्नुजु तुच्छउँ तहें धणहे तं अक्खणह न जाइ ।
कटरि थणंतरु मुद्धडहे जें मणु विच्चि ण माइ ॥
(तुच्छमध्यायाः तुच्छजल्पनशीलायाः ।

(२३) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले भ्यस् (पञ्चमी-बहुवचन) और आम् (षष्ठी-बहुवचन) के स्थान में हु आदेश होता है। जैसे :—वयंसिअहु[1] (वयस्याभ्यः अथवा वयस्यानाम्)।

(२४) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले ङि (सप्तमी-एकवचन) के स्थान में हि आदेश होता है। जैसे :—महिहि (मह्याम्)।

(२५) अपभ्रंश में नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान शब्द से पर में आनेवाले जस् (प्रथमा-बहुवचन) और शस् (द्वितीया-बहुवचन) के स्थान में इं आदेश होता है। जैसे :—कमलइं[1] अलिउलइं (कमलानि, अलिकुलानि)।

तुच्छाच्छरोमावल्याः तुच्छरागायाः तुच्छतरहासायाः।
प्रियवचनमलभमानायाः तुच्छकायमन्मथनिवासायाः॥
अन्यद् यत्तुच्छं तस्याः धन्यायाः तदाख्यातुं न याति।
आश्चर्यं स्तनान्तरं मुग्धायाः येन मनो वर्त्मनि न माति॥)

१. भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु॥
(भव्यं भूतं यत् मारितः भगिनि अस्मदीयः कान्तः।
अलज्जिष्यत् वयस्याभ्यः (नाम्) यदि भग्नः गृहं ऐष्यत्॥)

२. वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति।
अद्धा वलया महिहि गम अद्धा फुट्ट तडत्ति॥
(वायसं उड्डापयन्त्याः प्रियो दृष्टः सहसेति।
अर्द्धानि वलयानि मह्या गतानि अर्द्धानि स्फुटितानि तटिति॥)

१. कमलइं मेल्लवि अलिउलइं करि-गण्डाइं महन्ति।
असुलह-मेच्छण जाहं भलि ते ण वि दूर गणयन्ति॥

(२६) अपभ्रंश में नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान कान्त (जिसके अन्त में असहित क हो) शब्द से पर में आनेवाले सु (प्रथमा-एकवचन) और अम् (द्वितीया-एकवचन) के स्थान उं आदेश होता है। जैसे :—इसी अध्याय के नियम २२ की पाद टिप्पणी २ में तुच्छउं (तुच्छम्) है। और भग्गउं[1] (भग्नकम्) इत्यादि को भी देखना चाहिए।

(२७) अपभ्रंश में अकारान्त सर्वादि से पर में आनेवाले ङसि (पञ्चमी-एकवचन) के स्थान में हाँ आदेश होता है। जैसे :—जहाँ होन्तउ आगदो, तहाँ होन्तउ आगदो (यस्मात् भवान् आगतः, तस्मात् भवान् आगतः) एवं कहाँ (कस्मात्)।

(२८) अपभ्रंश में अकारान्त किम् (क) से पर में आनेवाले ङसि के स्थान में इहे आदेश और क के अकार का लोप विकल्प से होता है। जैसे :—किहे[2] (कस्मात्), कहाँ (कस्मात्)।

(२९) अपभ्रंश में अकारान्त सर्वादि शब्दों से पर में आने वाले सप्तमी के एकवचन ङि के स्थान में हिं आदेश होता है।

(कमलानि मुक्त्वा अलिकुलानि करिगण्डान् कांक्षन्ति ।
असुलभम् एष्टुं येषां निर्बन्धः ते नापि दूरं गणयन्ति ॥)

1. भग्गउं देक्खिवि निअय-बलु, बलु पसरिअउं परस्सु ।
उम्मिल्लइ ससिरेह जिवं करि-करवालु पियस्सु ॥
(भग्नकं दृष्ट्वा निजकं बलं बलं प्रसृतकं परस्य ।
उन्मीलति शशिलेखा यथा करे करवालः प्रियस्य ॥)

२. जइ तहें तुट्टउ नेहडा मइँ सहुँ न वि तिल-तार ।
तं किहें वङ्केहिं लोअणेंहिं जोइज्जउँ सय-वार ॥
(यदि तस्याः त्रुट्यतु स्नेहः मया सह नापि तिलतारः ।
तत् कस्मात् वक्राभ्यां लोचनाभ्यां दृश्ये (अहं) शतवारम् ॥)

जैसेः—जहिं[1], तहिं, एक्कहिं (यस्मिन्, तस्मिन्, एकस्मिन्)

(३०) अपभ्रंश में अकारान्त यद्, तद् और किम् (य, त, क) से पर में आनेवाले षष्ठी के एकवचन ङस् के स्थान में आसु आदेश विकल्प से होता है। और शब्द के टि (अ) का लोप भी होता है। जैसेः—जासु, तासु, कासु[2] (यस्य, तस्य, कस्य)।

(३१) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यद्, तद्, किम् (या, ता, का) से पर में आनेवाले षष्ठी के एकवचन ङस् के स्थान में विकल्प से अहे आदेश और टि (आ) का लोप भी होता है। जैसेः—जहे केरउ, तहे केरउ, कहे केरउ (यस्याः कृते, तस्याः कृते, कस्याः कृते)।

(३२) अपभ्रंश में सु और अम् (प्रथमा-द्वितीया के एक-वचन) के पर में रहने पर यद् और तद् शब्दों के स्थान में

---

१. जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि कन्तु पयासइ मग्गु॥
(यस्मिन् कल्प्यते शरेण शरः छिद्यते खड्गेन खड्गः।
तस्मिन् तादृशे भट-घटा-निवहे कान्तः प्रकाशयति मार्गम्॥)

२. कन्तु महारउ हलि सहिए निच्छइँ रूसइ जासु।
अत्थिहिं, सत्थिहिं हत्थिहिं वि ठाउ फेडइ तासु॥
(कान्तः अस्मदीयः हला सखिके निश्चयेन रुष्यति यस्य।
अस्त्रैः शस्त्रैः हस्तैरपि स्थानमपि स्फोटयति तस्य॥)
जीविउ कासु न वल्लहउँ धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर-निवडिअइं, तिण सम गणइ विसिट्ठु॥
जीवितं कस्य न वल्लभकं धनं पुनः कस्य नेष्टम्।
द्वे अपि अवसर-निपतितं तृणसमे गणयति विशिष्टः॥

क्रमशः ध्रुं और त्रं आदेश विकल्प से होते हैं। जैसेः—प्रङ्गणि चिट्ठदि नाहु ध्रुं त्रं रणि करदि न भ्रन्त्ति (प्राङ्गणे तिष्ठति नाथः यत् यद् रणे करोति न भ्रान्तिम्); पक्ष में तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ (तत् जल्प्यते यन्निर्वहति)।

(३३) अपभ्रंश में नपुंसक-लिङ्ग में वर्तमान इदम् शब्द के स्थान में सु और अम् के पर में रहने पर इमु आदेश होता है। जैसेः—इमु कुलु तुह तणउँ; इमु कुलु देक्खु (इदं कुलं इत्यादि)।

(३४) अपभ्रंश में प्रथमा और द्वितीया के एकवचनों में एतद् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में एह, पुँल्लिङ्ग में एहो और नपुंसक में एहु रूप होते हैं। जैसेः—एह कुमारी, एहो नरु, एहु मणोरह-ठाणु (एषा कुमारी, एष नरः, एतन्मनोरथस्थानम्।)

(३५) अपभ्रंश जस्-शस् के आने पर एतद् शब्द के स्थान में एइ आदेश होता है। देखो—इसी अध्याय के नियम २ तथा ३ की पादटिप्पणी एइ पेच्छ (एतान् प्रेक्षस्व)।

(३६) अपभ्रंश में जस्-शस् के आने पर अदस् शब्द के स्थान में ओइ आदेश होता है। जैसेः—ओइ[1]।

(३७) अपभ्रंश में इदम् शब्द के स्थान में आय आदेश स्वादि विभक्तियों के पर में रहने पर होता है। जैसे:—आयइं (इमानि), आयेण (एतेन), आयहो (अस्य) इत्यादि।

(३८) अपभ्रंश में सर्व शब्द के स्थान में साह आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—साहु वि लोउ; सव्वु विलोउ (सर्वोऽपि लोकः)।

---

१. जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ।
विहलिअ-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ॥
(यदि पृच्छथ गृहाणि महान्ति तद् महान्ति गृहाणि अमूनि।
विहलितजनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य॥)

(३६) अपभ्रंश में किम् शब्द के स्थान में काइं और कवण आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे :—इसी अध्याय के नियम २१ की पादटिप्पणी एक में देखो—'काइं न दूरे देक्खइ' (किं न दूरे पश्यति ?) और नियम २२ की पादटिप्पणी दो में 'ताहँ पराई कवण घृण' (तयोः परकीया का घृणा ?); 'किं गज्जहि खल मेह' (किं गर्जसि खल मेघ)।

(४०) अपभ्रंश में युष्मद्, अस्मद्-विषयक नियमों को न लिख कर यहाँ हम उनके रूप ही लिख रहे हैं। ये रूप हेमचन्द्र के अनुसार हैं। नियमों के लिए उन्हीं के ४. ३६८ से ४. ३८१ तक सूत्रों को देखना चाहिए।

अपभ्रंश में युष्मद् शब्द के रूप:—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुहुं	तुम्हे, तुम्हइं
द्वितीया	पइं, तइं	तुम्हे, तुम्हइं
तृतीया	पइं, तइं	तुम्हेहिं
पञ्चमी	तउ, तुज्झ, तुध्र (तुहु)	तुम्हहं
षष्ठी	,, ,, ,, ,,	तुम्हहं
सप्तमी	पइं, तइं	तुम्हासु

अपभ्रंश में अस्मद् शब्द के रूप:—

प्रथमा	हउं	अम्हे, अम्हइं
द्वितीया	मइं	अम्हे, अम्हइं
तृतीया	मइं	अम्हेहिं
पञ्चमी	महु, मज्झु	अम्हहं
षष्ठी	महु, मज्झु	अम्हहं
सप्तमी	मइं	अम्हासु

(४१) अपभ्रंश में धातु से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहुवचन में तिङ् का आदेश 'हिं' विकल्प से होता है। जैसे:—धरहिं, करहिं, सहहिं[1] (धरतः, कुरुतः, शोभन्ते)

(४२) अपभ्रंश में धातु से, वर्तमान काल के मध्यम पुरुष के एकवचन में, तिङ् के स्थान में 'हि' आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—रुअहि (रोदिषि), लहहि[2] (लभसे); पक्ष में रुअसि इत्यादि।

(४३) अपभ्रंश में धातु से, वर्तमान काल के मध्यम पुरुष के बहुवचन में, आनेवाले तिङ् के स्थान में हु आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—इच्छहु[3] (इच्छथ); पक्ष में—इच्छह।

---

१. मुह-कबरि-बन्ध तहें सोह धरहिं।
नं मल्ल-जुज्झु ससिराहु करहिं॥
(मुखकबरीबन्धौ तस्याः शोभां धरतः।
ननु मल्ल-युद्धं शशिराहू कुरुतः॥)
तहें सहहिं कुरल भमर-उल- तुलिअ।
नं तिमिर डिम्भ खेल्लन्ति मिलिअ॥
(तस्याः शोभन्ते कुरलाः भ्रमरकुलतुलिताः।
ननु भ्रमरडिम्भाः क्रीडन्ति मिलिताः॥)

२. बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस॥
चातक (पपीहा) पिबामि पिबामि (प्रियः प्रियः)
भणित्वा कियत् रोदिषि हताश
तव जले मम पुनर्वल्लभे द्वयोरपि न पूरिता आशा॥)

३. बलि-अब्भत्थणि महु-महणु लहुईहूआ सोइ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउं देहु म मग्गहु कोइ॥

(४४) अपभ्रंश में धातु से पर में आनेवाले वर्तमानकालिक उत्तम पुरुष के एकवचन तिङ् के स्थान में उं आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—कड्ढउं (कर्षामि); पक्ष में कड्ढामि (कर्षामि)

(४५) अपभ्रंश में धातु से पर में आनेवाले वर्तमान-कालिक उत्तम पुरुष के बहुवचन तिङ् के स्थान में हुं आदेश विकल्प से होता है। जैसे:—लहहुं[3], लभामहे); जाहुं (यामः); वलाहुं (वलामहे)।

(४६) अपभ्रंश में हि और स्व के स्थान में इ, उ और ए ये तीनों आदेश विकल्प से होते हैं। इ जैसे:—सुमरि[1], मेल्लि (स्मर, मुञ्च); विलम्बु[2] (विलम्बस्व); करे[3] (कुरु) पक्ष में—सुमरहि इत्यादि।

(बलेः अभ्यर्थने मधुमथनो लघुकीभूतः, सोऽपि।
यदि इच्छथ महत्त्वं दत्त मा मार्गयत कमपि॥)

२. विहि विणडउ पीडन्तु गह मं धणि करहि बिसाउ।
संपइ कड्ढउँ वेस जिवँ छुड्ड अग्घइ ववसाउ॥
(विधिर्विनाटयतु ग्रहाः पीडयन्तु मा धन्ये कुरु विषादम्।
संपदं कर्षामि वेषमिव यदि अर्घति व्यवसायः॥)

३. खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहुं पिय तहिँ देसहिँ जाहुँ।
रण-दुब्भिक्खें भग्गाइं विणु जुज्झें न वलाहुँ॥
(खड्ग-विसाधितं यत्र लभामहे तत्र देशे यामः।
रणदुर्भिक्षेण भग्नाः विना युद्धेन न वलामहे॥)

१. २. ३. कुञ्जर सुमरि म सल्लइउ सरला सास म मेल्लि।
कवल जि पाविय विहि-वसिण ते चरि माणु म मेल्लि॥
भमरा एत्थु वि लिम्बडइ कें वि दियहडा विलम्बु।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु फुल्लइ जाम कयम्बु॥

(४७) अपभ्रंश में भविष्यत्कालिक तिङ्-संबन्धी 'स्य' के स्थान में स आदेश विकल्प से होता है। जैसे :—होसइ[1]; पक्ष में—होहिइ (भविष्यति)।

(४८) संस्कृत के 'क्रिये' इस क्रियापद के स्थान में अपभ्रंश में कीसु यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे :—'तसु कन्तहों बलि कीसु (तस्य कान्तस्य बलिं क्रिये)।

संस्कृत धातुओं के अपभ्रंश में आदेश :—

धातु	आदेश	उदाहरण
भू (पर्याप्ति में)	हुच्च	अहरि पहुच्चइ[2] नाहु (अधरे प्रभवति नाथः)
ब्रू	ब्रुव	ब्रुवह[3] सुहासिउ किंपि (ब्रूत सुभाषितं किञ्चित्)
,,	ब्रोप्प	ब्रोप्पिणु[4] (उक्त्वा)

प्रिय एम्वहिँ करे सेल्लु करि छंड्डहि तुहुँ करवालु।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिँ अभग्गु कवालु॥
(कुञ्जर स्मर मा सल्लकीः सरलान् श्वासान् मा मुञ्च।
कवला ये प्राप्ता विधिवशेन तांश्चर मानं मा मुञ्च॥
भ्रमर अत्रापि निम्बके कति दिवसान् विलम्बस्व।
घनपत्रवान् छायाबहुलः फुल्लति यावत्कदम्बः॥
प्रिय एवमेव कुरु भल्लं करे त्यज त्वं करवालम्।
येन कापालिका वराका लान्ति अभग्नं कपालम्॥)

१. दिअहा जन्ति झडप्पडहिं पडहिं मनोरहं पच्छि।
जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि॥
(दिवसाः यान्ति वेगैः पतन्ति मनोरथाः पश्चात्।
यदस्ति तन्मान्यते भविष्यति कुर्वन् मा आस्स्व॥)

२. हेम० ४. ३९०. ३. हेम० ४. ३९१. ४. हेम० ४. ३९१.

व्रज	वुञ	वुञइ, वुञेप्पि, वुञेप्पिणु[1]
दृश	प्रस्स	प्रस्सदि[2]
ग्रह	गृण्ह	पढ, गुण्हेप्पिणु,[3] व्रतु (पठ गृहीत्वा व्रतम्)
तक्ष	छोल्ल	ससि छोल्लिज्जन्तु[4] (शशी अतक्षिष्यत)
तापि	झलक्क	सासानलजाल झलक्किअउ[5] (श्वासानलज्वालासन्तापितम्।)
शल्याय	खुडुक्क	हिअइ खुडुक्कइ[6] (हृदये शल्यायते)
गर्ज	घुडुक्क	घुडुक्कइ[7] मेहु (गर्जति मेघः)

(४६) अपभ्रंश में पद के आदि में अवर्तमान किन्तु स्वर से पर में आनेवाले और असंयुक्त क, ख, त, थ, प, फ, वर्णों के स्थान में प्रायः ग, घ, द, ध, ब और भ क्रम से ही होते हैं। जैसे:—पिअमाणुसविच्छोह-गरु (प्रियमनुष्यविक्षोभकरम्); सुघिँ चिन्तिज्जइ माणु (सुखं चिन्त्यते मानः); कधिदु (कथितम्); सबधु (शपथम्); सभलउ (सफलम्)।

(५०) अपभ्रंश में पद के आदि में अवर्तमान असंयुक्त मकार के स्थान में अनुनासिक वकार विकल्प से होता है। जैसे:—कवँलु, भवँरु (कमलम्, भ्रमरः); जिवँ, तिवँ (जिम, तिम)।

(५१) अपभ्रंश में संयोग के बाद में आनेवाले रेफ का लुक् विकल्प से होता है। जैसे:—जइ केवँइ पावीसु पिउ (यदि

---

१. हेम० ४. ३९२. २. हेम० ४. ३९३.

३. हेम० ४. ३९४. ४. हेम० ४. ३९५.

५. तुलना कीजिए—भोजपुरी के 'झरकना' से। हेम० ४. ३९५.

६. 'काँटे जैसा आचरण करना' इस अर्थ में। हेम० ४. ३९५.

७. तुलना कीजिए—हिन्दी के 'घुडकना' से। हेम० ४. ३९५.

कथञ्चित् प्राप्स्यामि प्रियम्); पक्ष में—जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु प्रियेण (यदि भग्नाः परकीयास्तत्सखि मम प्रियेण ।)

(५२) अपभ्रंश में कहीं-कहीं सर्वथा अविद्यमान रेफ भी होता देखा जाता है। जैसे :—व्रासु महारिसि एंउ भणइ (व्यासः महर्षिः एतद् भणति); 'कहीं कहीं' ऐसा कहने से 'वासेण वि भारहखम्भि बद्ध (व्यासेनापि भारतस्तम्भे बद्धम् ।) में नियम लागू नहीं हुआ।

(५३) अपभ्रंश में आपद्, विपद्, और संपद् के अन्त्य द् के स्थान में कहीं-कहीं इ हो जाता है। जैसे :—अणउ करन्तहो पुरिसहो आवइ आवइ (अनयं कुर्वतः पुरुषस्य आपद् आयाति); विवइ (विपद्); संपइ (संपद्); 'कहीं-कहीं' कहने से 'गुणहिं' न संपय कित्ति पर' (उपर्युक्त नियम ७ की पादटिप्पणी ४) में संपइ न होकर संपय हुआ।

(५४) अपभ्रंश में कथं, यथा और तथा के थादि अवयवों के स्थान में हर एक के एम, इम, इह और इध ये चार आदेश होते हैं और पूर्व के टि का लोप होता है। जैसे :—'केम[1] (केवँ[2]) समप्पउ दुट्ठु दिणु किध रयणी छुडु होय' (कथं समाप्यतां दुष्टं दिनं कथं रात्रिः शीघ्रं भवति ?) एवं किह; जेम (वँ), जिम (वँ), जिह, जिध, तेम (वँ), तिम (वँ), तिह तिध होते हैं।

(५५) अपभ्रंश में यादृश्, तादृश्, कीदृश् और ईदृश् शब्द क्रमशः जेहु, तेहु, केहु और एहु रूप प्राप्त करते हैं। जैसे :—जेहु, तेहु, केहु, एहु[3] (यादृक्, तादृक्, कीदृक्, ईदृक्)

---

१. तुलना कीजिए—गुजराती के केम, जेम और तेम से।

२. तुलना कीजिए—हिन्दी के क्यों, ज्यौं और त्यौं से।

३. मइं भणिअउ बलिराय तुहुं केहउ मग्गण एहु।

(५६) अकारान्त यादृश, तादृश, कीदृश और ईदृश के स्थान में जइस, तइस, कइस और अइस रूप होते हैं। जैसे:—जइसो, तइसो, कइसो और अइसो (यादृशः, तादृशः इत्यादि)

(५७) अपभ्रंश में यत्र के रूप जेत्थु और जत्तु तथा तत्र के रूप में तेत्थु और तत्तु होते हैं। जैसे:—जेत्थु, जत्तु (यत्र); तेत्थु, तत्तु[1] (तत्र)।

(५८) अपभ्रंश में यावत् के रूप जाम (जावँ), जाउं, जामहिं और तावत् के रूप ताम (तावँ), ताउ, तामहिं[2] (तावत्)।

जेहु तेहु न वि होइ वढ़ सइं नारायण एहु ॥
(मया भणितः बलिराज त्वं कीदृग् मार्गणः एषः।
यादृक्, तादृक् नापि भवति मूर्ख स्वयं नारायणः इदृक् ॥)

१. जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु।
जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु ॥
(यदि स घटयति प्रजापतिः कुत्रापि लात्वा शिक्षाम्।
यत्रापि तत्रापि अत्र जगति भण तदा तस्याः सदृक्षीम् ॥)

२. जाम न निवडइ कुम्भ-यडि सीह-चवेड-चडक्क।
ताम समत्तहँ मयगलहं पइ पइ वज्जइ ढक्क ॥
(यावन्न निपतति कुम्भ-तटे सिंहचपेटाचटात्कारः।
तावत्समस्तानां मदकलानां पदे पदे वाद्यते ढक्का ॥)
तिलहँ तिलत्तणु ताउँ पर जाउँ न नेह गलन्ति।
जामहिँ विसमी कज्ज-गइ जीवहँ मज्झे एइ ॥
(तिलानां तिलत्वं तावत् परं यावत् न स्नेहा गलन्ति।
यावत् विषमा कार्यगतिः जीवानां मध्ये आयाति ॥)
तामहिं अच्छउ इयर जणु सुअणु वि अन्तरु देइ।
(तावत् आस्तामितरः जनः सुजनोऽप्यन्तरं ददाति ॥)

(५६) अपभ्रंश में कुत्र के स्थान में केत्थु और अत्र के स्थान में एत्थु रूप होते हैं। जैसेः—केत्थु (कुत्र); एत्थु[1] (अत्र)

(६०) अपभ्रंश में (परिमाणार्थक) यावद् और तावद् के स्थान में जेवड और तेवड रूप विकल्प से होते हैं। इसी प्रकार (परिमाणार्थक) इयत् और कियत् के स्थान में एवड और केवड रूप विकल्प से होते हैं। जैसेः—जेवडु अन्तरु रावण रामहँ तेवडु अन्तरु पट्टण-गामहँ (यावदन्तरं रावणरामयोः तावदन्तरं पत्तन (पट्टण)-ग्रामयोः) एवं एवडु अन्तरु (इयत् अन्तरम्); केवडु अन्तरु (कियत् अन्तरम्)।

(६१) अपभ्रंश में परस्पर के स्थान में 'अवरोप्पर' रूप होता है। जैसेः—अवरोप्परु जोअन्ताहं सामिउ गञ्जिउ जाहं (परस्परं युद्धयमानानां स्वामी पीडितः येषाम्)।

(६२) अपभ्रंश में कादि (क+आदि) व्यञ्जनों में स्थित ए और ओ एवं पदान्त में वर्तमान उं, हुं, हिं और हं का लघु उच्चारण किया जाता है। जैसेः—अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहे; बलि किज्जउँ सुअणस्सु; दइउ घडावइ वणि तरुहुं; तरुहुं वि वक्कलु; खग्ग विसाहिउ जहिं लहहुं; तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि।

(६३) प्राकृत के नियमानुसार जहाँ म्ह हुआ हो उसका (म्ह का) अपभ्रंश में म्भ होता है। जैसेः—संस्कृत में ग्रीष्मः, प्राकृत में गिम्हो और अपभ्रंश में गिम्भो रूप होते हैं।

(६४) अपभ्रंश में अन्यादृश शब्द के स्थान में अन्नाइस और अवराइस ये आदेश होते हैं। जैसेः—अन्नाइसो, अवराइसो (अन्यादृशः)।

---

१. इन उदाहरणों के लिए इसी अध्याय के नियम ५७ की पाद-टिप्पणी २ देखो।

नीचे कुछ अन्य संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश रूप मात्र ही दिये जा रहे हैं। विशेष जानकारी के लिए हेमचन्द्र के व्याकरण का अवलोकन करना चाहिए।

संस्कृत	अपभ्रंश	हेम० सूत्र संख्या
प्रायः	प्राउ, प्राइव, प्राइम्व, पग्गिम्व	४. ४१४.
अन्यथा	अनु, अन्नह	४. ४१५.
कुतः	कउ, कहन्तिहु	४. ४१६.
ततः, तदा	तो	४. ४१७.
एवं	एम्व	४. ४१८.
परम्	पर	,, ,,
समम्	समाणु	,, ,,
ध्रुवम्	ध्रुव	,, ,,
मा	मं	,, ,,
मनाक्	मणाउ	,, ,,
किल	किर	४. ४१९.
अथवा	अहवइ	,, ,,
दिवा	दिवे	,, ,,
सह	सहुं	,, ,,
नहि	नाहिं	,, ,,
पश्चात्	पच्छइ	४. ४२०.
एवमेव	एम्वइ	,, ,,
एव	जि	,, ,,
इदानीम्	एम्वहिं, एम्वहि	,, ,,
प्रत्युत	पच्चलिउ	,, ,,
इतः	एत्तहे	,, ,,
विषण्णः	वुन्नउ	४. ४२१
उक्तम्	वुत्तउं	,, ,,

वर्त्मनि	विच्चि	४. ४२१., ३५०.
शीघ्रम्	वहिल्लउ	४. ४२२.
कलहकारी	घङ्घल	,, ,,
अस्पृश्यसंसर्ग	विट्टाल	,, ,,
भयं	द्रवक्क	,, ,,
आत्मीयम्	अप्पणं	,, ,,
दृष्टि	द्रेहि	,, ,,
गाढ	निच्चट्ट	,, ,,
साधारण	सड्ढल	,, ,,
कौतुक	कोड्ड	,, ,,
क्रीडा	खेड्ड	,, ,,
रम्य	रवण्ण	,, ,,
अद्भुत	ढक्करि	,, ,,
हे सखि	हेल्लि	,, ,,
पृथक् पृथक्	जुअं जुअ	,, ,,
मूढ	नालिउ, वढ	,, ,,
नव	नवख	,, ,,
अवस्कन्द	दडवड	,, ,,
यदि	छुड्डु	,, ,,
संबन्धी	केर, तण	,, ,,
मा भैषीः	मब्भीसा	,, ,,
यद् यद् दृष्टम्	जाइट्ठिआ	,, ,,
	हुहुरु[1]	४. ४२३.
	घुग्घ[2]	,, ,,

---

१. शब्दानुकरण अर्थ में । २. चेष्टानुकरण अर्थ में ।

	घइं[१]	४. ४२४.
	खाइं[२]	" "
	केहिं[३]	४. ४२५.
	तेहिं[४]	" "
	रेसि[५]	" "
	रेसिं[६]	" "
	तणेण[७]	" "
पुनः	पुणु	४. ४२६.
विना	विणु	" "
अवश्यम्	अवसें अवस	४. ४२७.
एकशः	एक्कसि	४. ४२८.

(६५) अपभ्रंश में नाम (प्रातिपदिक) के आगे स्वार्थ में अ, अड, और उल्ल प्रत्यय होते हैं। और स्वार्थिक क प्रत्यय का लुक् भी होता है। जैसे :—बे दोसडा (द्वौ दोषौ) कुडुल्ली (कुटी)।

विशेष :—जहाँ अड और उल्ल प्रत्यय होते हैं, वहाँ पूर्व के टि का लोप भी हो जाता है।

(६६) पूर्वोक्त नियमानुसार जो प्रत्यय किये जाते हैं तदन्त नाम से स्त्रीत्व अर्थ के द्योतन में ई प्रत्यय हो जाता है और टि का लोप भी होता है। जैसे :—गोरड + ई = गोरडी।

(६७) अपभ्रंश में स्त्रीलिङ्ग के द्योतन करने वाले अ प्रत्ययान्त से पर में आने वाले प्रत्यय से पुनः आ प्रत्यय होता है। जैसे :—धूलि = धूल = धूलड = धूलडिआ (धूलिः)।

विशेष :—स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नहीं रहने पर यह नियम लागू नहीं होता। जैसे :—कन्नडइ (कर्णे)।

---

१. २. अनर्थक निपात। ३. ४. ५. ६. ७. तादर्थ्य निपात।

(६८) अपभ्रंश में युष्मदादि शब्दों से पर में आने वाले ईय प्रत्यय का आर आदेश होता है। और उसके पूर्व के टि का लोप भी होता है। जैसे:—तुहारेण (युष्मदीयेन); अम्हारा (अस्मदीयम्); महारा (अस्मदीयः)।

(६९) अपभ्रंश में इदम्, किम्, यद्, तद् और एतद् शब्दों से पर में आने वाले अतु प्रत्यय के स्थान में एत्तुल आदेश होता है और पूर्व के टि का लोप होता है। जैसे:—एत्तुलो, केत्तुलो, जेत्तुलो, तेत्तुलो।

(७०) अपभ्रंश में सप्तम्यन्त सर्वादि से पर में आने वाले त्र प्रत्यय के स्थान में एत्तहे आदेश होता है। पूर्व के टि का लोप होता है। जैसे:—एत्तहे, तेत्तहे (अत्र, तत्र)।

(७१) अपभ्रंश में त्व और तल प्रत्ययों के स्थान में प्रायः प्पण आदेश होता है। जैसे:—वड्डप्पणु (महत्त्वम्); पक्ष में—वड्डत्तणहो (महत्त्वस्य)।

(७२) अपभ्रंश में तव्य प्रत्यय के स्थान में इएव्वउं, एव्वउं और एवा ये तीन आदेश होते हैं। जैसे:—करिएव्वउं, मरिएव्वउं (कर्तव्यम्, मर्तव्यम्); सहेव्वउं (सोढव्यम्); सोएवा, जग्गेवा (स्वपितव्यम्, जागरितव्यम्)।

(७३) अपभ्रंश में क्त्वा प्रत्यय के स्थान में इ, इउ, इवि, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एवि और एविणु आदेश होते हैं। **इ जैसे:**—मारि (मारयित्वा); **इउ जैसे:**—भज्जिउ (भङ्क्त्वा), **इवि जैसे:**—चुम्बिवि (चुम्बित्वा); **अवि जैसे:**—विछोडवि (विच्छोट्य); **एप्पि जैसे:**—जेप्पि (जित्वा); **एप्पिणु जैसे:**—चएप्पिणु (त्यक्त्वा); **एवि जैसे:**—पालेवि (पालयित्वा); **एविणु जैसे:**—लेविणु (लात्वा)।

(७४) अपभ्रंश में 'तुम्' प्रत्यय के स्थान में एवं, अण, अणहं, अणहिं, एप्पि, एप्पिणु, एवि और एविणु ये आठ आदेश होते हैं। **एवं जैसे**:—देवं (दातुम्); **अण जैसे**:—करण (कर्तुम्); **अणहं और अणहिं जैसे**:—भुञ्जणहं, भुञ्जणहिं (भोक्तुम्); **एप्पि, एप्पिणु, एवि और एविणु जैसे**:—जेप्पि, चएप्पिणु, पालेवि और लेविणु (जेतुं, त्यक्तुं, पालयितुं और लातुम्)।

विशेष:—गम धातु से एप्पिणु आने पर गम्पिणु और गमेप्पिणु रूप होते हैं। उसी तरह एप्पि के रहने पर गम्पि और गमेप्पि रूप होते हैं।

(७५) अपभ्रंश में तृन् प्रत्यय के स्थान में अणअ आदेश होता है। जैसे:—मारणउ (ओ); बोल्लणउ (मारयिता, कथयिता)।

(७६) अपभ्रंश में इव (उत्प्रेक्षा में) के अर्थ में नं, नउ, नाइ, नाइव, जणि, जणु ये छः रूप होते हैं।

नं जैसे:—नं मल्ल जुज्झु ससिराहु करहिं (ननु मल्लयुद्धं शशिराहू कुरुतः) **नउ जैसे**:—नउ जीवग्गलु दिण्णु। (ननु जीवार्गलो दत्तः) **नाइ जैसे**:—थाह गवेसइ नाइ। (स्तोघं गवेषयतीव) **नावइ जैसे**:—नावइ गुरु-मच्छर भरिउ। (ननु गुरु-मत्सर-भरितम्) **जणि जैसे**:—सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ बइट्ठउ (शोभते इन्द्रनीलः ननु कनके उपवेशितः) **जणु जैसे**:—निरुवम-रसु पिएं पिएवि जणु। (निरुपमरसं प्रियेण पीत्वेव)।

(७७) अपभ्रंश में लिङ्ग प्रायः बदलते रहते हैं। जैसेः— गाय-कुम्भइं (गजकुम्भानि। कुम्भ शब्द पुंल्लिङ्ग है, किन्तु नपुंसक के रूप में व्यवहृत हुआ है)।

(७८) अपभ्रंश के शेष कार्य सौरसेनी के अनुसार किये जाते हैं।

इति शुभम्।



परिशिष्ट

अक्षरानुक्रम शब्दसूची

आ

ऋ

ए

ऐ

ओ

क

छ

भ

य

संस्कृत साहित्य का इतिहास

(बृहत् संस्करण)

श्री वाचस्पति गैरोला

इस ग्रन्थ को लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि पाठक परम्परा और पूर्वाग्रह के मोह में न पड़कर प्रत्येक विवादग्रस्त प्रश्न का समाधान स्वयं कर सकें। पाठक पर अपने विचार लादने की अपेक्षा उपयुक्त यह समझा गया है कि विभिन्न मतवादों की समीक्षा करके वह स्वयं ही विषय के सही ध्येय को ग्रहण कर सके। भारतीयता या विदेशीपन का पक्षपात त्याग कर किसी भी विद्वान् के स्वस्थ और सही विचारों को उधार लेने में सङ्कोच नहीं किया गया है। पुस्तक की विषय-सामग्री और उसकी रूप-रेखा का गठन भी ऐसे ढङ्ग से किया गया है, जिससे संस्कृत भाषा की आधारभूत भावभूमि का परिचय प्राप्त होने के साथ-साथ सम-सामयिक परिस्थितियों का भी अध्ययन हो सके। आर्यों के आदि देश एवं आर्य-भाषाओं के उद्भव से लेकर उन्नीसवीं सदी तक की सहस्राब्दियों में संस्कृत-साहित्य की जिन विभिन्न विचार-वीथियों का निर्माण हुआ और भारत के प्राचीन राजवंशों के प्रश्रय से संस्कृत भाषा को जो गति मिली, उसका भी समावेश पुस्तक में देखने को मिलेगा।

मूल्य २०-००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(परीक्षोपयोगी संस्करण)

श्री वाचस्पति गैरोला

संस्कृत-साहित्य के इतिहास का यह संक्षिप्त संस्करण इस उद्देश्य से लिखा गया है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित इतिहासविषयक ज्ञान के संवर्धनार्थ विद्यार्थीवर्ग का इससे लाभ हो सके। पाठ्यक्रम की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो अनेक अन्य पुस्तकें लिखी गई हैं वे या तो सर्वांगीण नहीं हैं अथवा उनमें छात्रों के उपयोगी इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन की क्रमबद्ध रूपरेखा का अभाव है।

यह इतिहास पाठ्यक्रम की दृष्टि से तो लिखा ही गया है; किन्तु संस्कृत के बृहद् वाङ्मय का आमूल ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने का भी इसमें उद्योग किया गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत के छात्रों को वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास का अध्ययन कराया जाय, जिससे कि उनकी मेधाशक्ति का स्वतंत्र रूप से विकास हो सके और प्रस्तुत विषय पर उनके भाव-विचारों को नई दिशा में अग्रसर होने का अवकाश मिल सके।

मूल्य ८-००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१